आज़ादी का अमृत महोत्सव

भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा एवं प्रयोग

पाठ्यपुस्तक

वेद-विभूषण - I वर्ष / उत्तरमध्यमा - I वर्ष / कक्षा 11वीं

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

(शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार द्वारा स्थापित एवं मान्यता प्राप्त)

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात। आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥

कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वाशुभगन्धि भवेत्। तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम् ॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्-पक्षा या निमीयते। अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवाशये॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।

शतमाश्वा हिरण्ययाः शतं रथ्या हिरण्ययाः। शतं कुथा हिरण्ययाः शतं निष्का हिरण्ययाः॥

मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।

सुसस्याः कृषीस्कृधि।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ।

अपो याचामि भेषजम् ।

शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ।

नमो वृक्षेभ्यः।

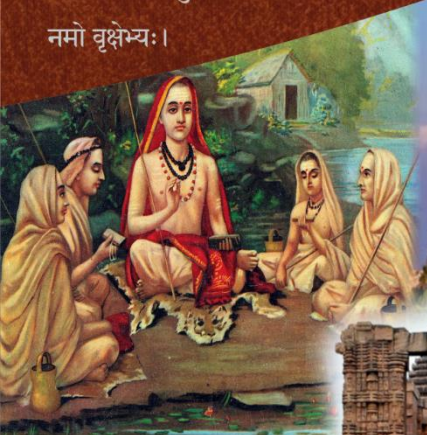

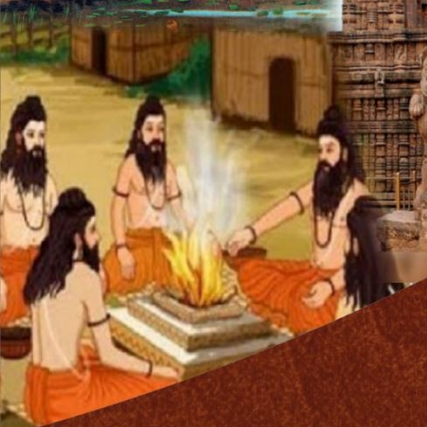

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

Phone : (0734) 2502266, 2502254,

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

भारतीय ज्ञान–विज्ञान परम्परा एवं प्रयोग

पाठ्यपुस्तक

वेद-विभूषण - I वर्ष / उत्तरमध्यमा - I वर्ष / कक्षा 11वीं

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

(शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार द्वारा स्थापित एवं मान्यता प्राप्त)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

लेखकगण : .....

आवरण एवं सज्जा : .....

चित्राङ्कन : .....

तकनीकी सहयोग : .....

अक्षरविन्यास : .....

© महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानम्, उज्जयिनी

ISBN : .....

मूल्य : .....

संस्करण : .....

प्रकाशित प्रति : .....

पेपर उपयोगः : आर.सी.टी.बी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

email : msrvvpujn@gmail.com,

Web : msrvvp.ac.in

दूरभाषा (0734) 2502255, 2502254

प्रस्तावना

(राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के आलोक में)

शिक्षा मन्त्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग), भारत सरकार ने माननीय शिक्षा मन्त्री जी (तत्कालीन मानव संसाधन विकास मन्त्री) की अध्यक्षता में राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान की स्थापना दिल्ली में 20 जनवरी, 1987 को सोसायटी पञ्जीकरण अधिनियम, 1860 के तहत की थी। भारत सरकार ने वेदों की श्रुति परम्परा का संरक्षण, संवर्धन, प्रसार और विकास के लिए प्रतिष्ठान की स्थापना का संकल्प संख्या 6-3/85-SKT-IV दिनाङ्क 30-3-1987 को भारत के राजपत्र में अधिसूचित किया था। वेदों के अध्ययन की श्रुति परम्परा (वेद संहिता, पद पाठ से घनपाठ तक, वेदाङ्ग, वेद भाष्य आदि), वेदों का पाठ संरक्षण, वैदिक स्वर तथा वैज्ञानिक आधार पर वेदों की व्याख्या का दायित्व वेद विद्या प्रतिष्ठान को दिया गया था। वर्ष 1993 में राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान के कार्यालय को उज्जैन में स्थानान्तरित करने के पश्चात् संगठन का नाम महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान कर दिया गया। वर्तमान में यह संगठन मध्यप्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त भूमि- परिसर, महाकाल नगरी, उज्जैन में स्थित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के संशोधित नीति-1992 और कार्यप्रणाली (प्रोग्राम ऑफ एक्शन)-1992 में भी वैदिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान को उत्तरदायित्व दिया गया था। भारत के प्राचीन ज्ञान कोष, मौखिक परम्परा और इस तरह की शिक्षा के लिए पारंपरिक गुरुओं को संयोजित करने के उद्देश्य को 1992 के कार्यप्रणाली (प्रोग्राम ऑफ एक्शन) में उल्लेखित किया गया था।

राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुरूप, राष्ट्रीय स्तर पर वेद और संस्कृत शिक्षा के लिए एक बोर्ड की स्थापना के पक्ष में राष्ट्रीय सहमति, जनादेश, नीति, विशिष्ट उद्देश्य और कार्यान्वयन रणनीतियों के अनुरूप, भारत सरकार के माननीय शिक्षा मन्त्रीजी की अध्यक्षता में महासभा और शासी परिषद के समावेश में ''महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड" की स्थापना 2019 में हुई है। MSRVVP का वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड भी वैदिक शिक्षा का एक भाग है और MSRVVP के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक है जैसा कि MOA और नियमों में संकल्पना की गई है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड को शिक्षा मन्त्रालय,भारत सरकार तथा भारतीय

विश्वविद्यालय संघ, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली से मान्यता प्राप्त है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा वर्ष 2015 में श्री एन. गोपालस्वामी (पूर्व चुनाव आयुक्त) की अध्यक्षता में गठित समिति ''संस्कृत के विकास के लिए विजन और रोडमैप - दस वर्षीय परिप्रेक्ष्य योजना'' की रिपोर्ट में अनुशंसा की गई है कि माध्यमिक विद्यालय स्तर तक वेद संस्कृत शिक्षा के पाठ्यक्रम मानकीकरण, संबद्धता, परीक्षा मान्यता, प्रमाणीकरण के लिए राष्ट्रस्तर पर वेद संस्कृत परीक्षा बोर्ड की स्थापना की जाए। समिति की अनुशंसा थी कि प्राथमिक स्तर का वैदिक एवं संस्कृत अध्ययन अभिप्रेरक, सम्प्रेरक एवं आनन्ददायी होना चाहिए। आधुनिक शिक्षा के विषयों को वैदिक और संस्कृत पाठशालाओं में सन्तुलित रूप से सम्मिलित करना भी आवश्यक है। इन पाठशालाओं की पाठ्यक्रम सामग्री को समकालीन समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप और प्राचीन ज्ञान का उपयोग करते हुए आधुनिक समस्याओं का समाधान खोजने के लिए प्रारूपित किया जाना चाहिए।

वेद पाठशालाओं के संबंध में समिति ने यह संस्तुति की है कि संस्कृत और आधुनिक विषयों की श्रेणीबद्ध सामग्री के परिचय के साथ-साथ वेद पाठ कौशल संवर्धन और वेद उच्चारण में मानकीकरण की आवश्यकता है ताकि वेद छात्र अन्ततः वेद भाष्य के अध्ययन तक पहुंच सकें और छात्रों को आगे की पढ़ाई के लिए मुख्यधारा में लाया जा सके। उचित स्तर पर वेदों के विकृति पाठ के अध्ययन पर बढ़ावा दिया जाना चाहिए। समिति के सदस्यों ने यह भी चिंता व्यक्त की है कि वैदिक सस्वर पाठ पूरे भारत में समान रूप से नहीं फैला है, इसलिए वैदिक सस्वर पाठ की शैलियों और शिक्षण पद्धति की क्षेत्रीय विविधताओं में हस्तक्षेप किए बिना स्थिति में सुधार के लिए उचित कदम उठाया जाना है।

यह भी अनुभव किया गया कि वेद और संस्कृत अविभाज्य हैं और एक दूसरे के पूरक हैं और देश भर में सभी वेद पाठशालाओं और संस्कृत पाठशालाओं के लिए परीक्षा मान्यता और सम्बद्धता की समस्याएँ समान है, इसलिए दोनों के लिए एक साथ वेद संस्कृत हेतु एक बोर्ड का गठन किया जा सकता है। समिति ने यह पाया कि बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षाओं को कानूनी रूप से वैध मान्यता प्राप्त होनी चाहिए, जो शिक्षा की आधुनिक बोर्ड प्रणाली के साथ समानता रखे। समिति ने पाया कि महर्षि सान्दीपनि

राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन को ''महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत विद्या परिषद्'' के नाम से परीक्षा बोर्ड का दर्जा दिया जाये, जिसका मुख्यालय उज्जैन में रहे। परीक्षा बोर्ड होने के अतिरिक्त अब तक जो सभी वेद कार्यक्रम और वेद पर गतिविधियाँ हैं, वे सभी प्रतिष्ठान में जारी रहेंगे।

वैदिक शिक्षा का प्रचार भारत की गौरवशाली ज्ञान परम्परा का एक व्यापक अध्ययन है और इसमें वैदिक अध्ययन (वेद संहिता, पद पाठ से घनपाठ तक, स्वर का सम्यक् प्रयोग ज्ञान आदि), सस्वर पाठ कौशल, मन्त्र उच्चारण और संस्कृत ज्ञान प्रणाली सामग्री की बहुस्तरीय श्रुति परम्परा सम्मिलित है। प्रतिष्ठान में NEP 2020 अनुरूप 3 + 4 (सात साल तक) के वेद अध्ययन की योजना में पारम्परिक छात्रों को मुख्य धारा में लाने की नीति के परिप्रेक्ष्य में अन्य विभिन्न आधुनिक विषयों जैसे संस्कृत, अंग्रेजी, मातृभाषा, गणित, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान, दर्शन, योग, वैदिक कृषि आदि पाठ्यक्रम के अनुसार तथा वैदिक शिक्षा पर केन्द्रित नीति निर्धारक निकायों में राष्ट्रीय सहमति, समय की उपलब्धता के आधार पर सभी अध्ययन संयोजित हैं। अध्ययन की यह योजना NEP 2020 के परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान प्रणाली पर ध्यान केन्द्रित करने वाले पाठ्यक्रम सामग्री में आधुनिक ज्ञान के साथ एवं भारतीय ग्रंथों से तैयार वैदिक ज्ञान के उपयुक्त सामग्री के साथ है।

प्रतिष्ठान बोर्ड की वेद पाठशालाओं, गुरु शिष्य ईकाइयों और गुरुकुलों में, पाठ्यक्रम मुख्य रूप से सम्पूर्ण सस्वर कण्ठस्थीकरण के साथ संपूर्ण वेद शाखा का अध्ययन होता है तथा संस्कृत, अंग्रेजी, मातृभाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान, दर्शन, योग, वैदिक कृषि और SUPW जैसे अतिरिक्त सहायक विषयों के साथ वेद अध्ययन होता है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि वेदों की 1131 शाखाएँ सस्वर पाठ के साथ थे, अर्थात् 21 ऋग्वेद में, 101 यजुर्वेद में, 1000 सामवेद में और 9 अथर्ववेद में। समय के साथ इन शाखाओं की एक बड़ी संख्या विलुप्त हो गई और वर्तमान में केवल 10 शाखाएँ, अर्थात् ऋग्वेद में एक, यजुर्वेद में 4, सामवेद में 3 और अथर्ववेद में 2 सस्वर पाठ के रूप में विद्यमान हैं, जिन पर भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित है, इन 10 शाखाओं के संबंध में भी बहुत कम प्रतिनिधि वेदपाठी पंडित है जो श्रुति परम्परा/पाठ/वेद ज्ञान परम्परा को उसके प्राचीन और पूर्ण रूप में संरक्षित किये हुए हैं। जब तक श्रुति परम्परा के अनुसार वैदिक शिक्षा पर मूलरूप से ध्यान नहीं दिया जाएगा, तब तक यह व्यवस्था सुदृढ़ नहीं हो पायेगी। वैदिक

श्रुति परम्परा की श्रुति अध्ययनों के पहलुओं को सामान्य/अध्ययन में स्कूल में न तो पढ़ाया जाता है और न ही किसी स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाता है, और न ही स्कूलों/बोर्डों के पास उन्हें आधुनिक स्कूल पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने और सञ्चालित करने की विशेषज्ञता है।

वैदिक छात्र जो श्रुति परम्परा / वेद का पाठ सीखते हैं, वे दूर-दराज के गाँवों, सीमावर्ती गाँवों आदि में वेद गुरुकुलों में, वेद पाठशालाओं में, वैदिक आश्रमों में हैं, और वेद अध्ययन के लिए उनका समर्पण लगभग 1900 - 2100 घंटे प्रतिवर्ष है। जो अन्य स्कूल बोर्ड की सीखने की प्रणाली के समय से दोगुना है और वैदिक छात्रों को ''गुरु-मुख-उच्चारण अनुच्चारण'' - वेद गुरु के सामने बैठकर शब्दशः उच्चारण सीखना होता है, संपूर्ण वेद, शब्दशः उच्चारण (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि) के साथ कण्ठस्थ करना होता है और स्मृति के बल पर बिना किसी पुस्तक/पोथी को देखे।

ज्ञात हो कि इस प्रकार के वैदिक अध्ययन, वेद मन्त्रपाठ की रीति, गुरु शिष्य की अखण्ड मौखिक परम्परा से प्रचलित क्रम के कारण वेदों के मौखिक प्रसारण को मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत रूप में यूनेस्को-विश्व मौखिक विरासत सूची में मान्यता प्राप्त हुई है। इसलिए, सदियों पुरानी वैदिक शिक्षा (श्रुति परम्परा/सस्वर पाठ/वेद ज्ञान परम्परा) की प्राचीनता और सम्पूर्ण अखण्डता को बनाए रखने के लिए सुयोग्य कार्यनीति की आवश्यकता है। इसलिए, प्रतिष्ठान और इस बोर्ड ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 द्वारा निर्धारित कौशल और व्यावसायिक विषयों के साथ-साथ आधुनिक विषयों जैसे संस्कृत, अंग्रेजी, मातृभाषा, गणित, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान, दर्शन, योग, वैदिक कृषि आदि के साथ विशिष्ट प्रकार के वेद पाठ्यक्रम को अपनाया है।

कोई भी व्यक्ति तब सुखी होकर जी सकता है जब वह परा-विद्या और अपरा-विद्या दोनों का अध्ययन करता है। वेदों में से भौतिक ज्ञान, उनकी सहायक शाखाएँ और भौतिक रुचि के विषय अपरा-विद्या कहलाते थे। सर्वोच्च वास्तविकता का ज्ञान, उपनिषदों की अंतिम खोज, परा-विद्या कहलाती है। वेद और उसके सहायक के रूप में अध्ययन किए जाने वाले विषयों की कुल संख्या 14 है। विद्या की 14 शाखाएँ ये हैं - चार वेद, छह वेदांग, मीमांसा (पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा), न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र सहित चौदह विद्याएं अठारह हो जाते हैं। सदियों

से भारत उपमहाद्वीप में सभी शिक्षा संस्कृत भाषा में ही थी, क्योंकि इस उपमहाद्वीप में लम्बे समय तक संस्कृत बोली जाने वाली भाषा रही। इसलिए वेद भी सुलभता से समझे जाते थे।

तक्षशिला के विद्यालयों के सम्बन्ध में अठारह शिल्प-या औद्योगिक और तकनीकी कला और शिल्प का उल्लेख किया गया है। छान्देग्य उपनिषद् तथा नीति ग्रन्थों में भी इन का विवरण है। निम्नलिखित 18 कौशल/व्यावसायिक विषय अध्ययन के विषय बताए गए हैं- (1) गायन सङ्गीत (2) वाद्य सङ्गीत (3) नृत्य (4) चित्रकला (5) गणित (6) लेखाशास्त्र (7) इञ्जीनियरिङ्ग (8) मूर्तिकला (9) प्रजनन (10) वाणिज्य (11) चिकित्सा (12) कृषि (13) परिवहन और कानून (14) प्रशासनिक प्रशिक्षण (15) तीरंदाजी, किला निर्माण और सैन्य कला (16) नये वस्तु या उपज का निर्माण । उपर्युक्त कला और शिल्प में तकनीकी शिक्षा के लिए प्राचीन भारत में एक प्रशिक्षु प्रणाली विकसित की गई थी। विद्या और अविद्या मनुष्य को इस प्रपंच में सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करने के लिए समर्थ और परलोक में मुक्ति योग्य सिद्ध करती है ।

दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यताओं में सर्व प्रथम भारतीय सभ्यता में शास्त्रों, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को सीखने की एक विशाल एवं सुदृढ परम्परा रही है। भारत प्राचीन काल से ही ऋषियों, ज्ञानियों और संतों की भूमि के साथ-साथ विद्वानों और वैज्ञानिकों की भूमि भी रही है। शोध से पता चला है कि भारत सीखने सिखाने (विद्या-आध्यात्मिक ज्ञान और अविद्या- भौतिक ज्ञान) के क्षेत्र में विश्व गुरु तो था ही, सक्रिय रूप से भी सम्पूर्ण प्रपञ्च में योगदान दे रहा था और भारत में आधुनिक विश्वविद्यालयों जैसे सीखने के विशाल केन्द्र स्थापित किए गए थे, जहाँ हजारों शिक्षार्थी आते थे। प्राचीन ऋषियों द्वारा खोजी गई कई विज्ञान और प्रौद्योगिकी तकनीकी, सीखने की पद्धतियाँ, सिद्धान्तों और तकनीकों ने कई पहलुओं पर हमारे विश्व के ज्ञान के मूल सिद्धान्तों को बनाया और प्रबल किया है, खगोल विज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, गणित, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, ध्वन्यात्मकता, व्याकरण आदि पर दुनिया में भारत का योगदान समझा जाता है। प्रत्येक भारतीय बालक, बालिका द्वारा इस महान् देश का गौरवान्वित नागरिक होने के कारण इन विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। भारत की संसद् के प्रवेश द्वार पर उद्धृत ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' जैसे भारत के विचार और विभिन्न अवसरों पर संवैधानिक प्राधिकरणों द्वारा उद्धृत कई वेद मंत्र के अर्थ वेदों के अध्ययन से ही ज्ञात होते हैं और उन पर मनन करके

ही वास्तविक प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। वेदों और सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में "सत्, चित, आनंद" के रूप में सभी प्राणियों की अन्तर्निहित समानता पर जोर दिया गया है।

यह भी उल्लेख किया गया है कि वेद वैज्ञानिक ज्ञान के स्रोत हैं और हमें आधुनिक समस्याओं के समाधान के लिए वेदों और भारतीय शास्त्रों के स्रोतों की ओर पुनः निष्ठा से देखना होगा। जब तक छात्रों को वेदों का पाठ, शुद्ध वैदिक ज्ञान सामग्री और वैदिक दर्शन को आध्यात्मिक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान के रूप में नहीं पढ़ाया जाता है, तब तक आधुनिक भारत की आकांक्षा को पूरा करने के लिए वेदों के सन्देश का प्रसार पूर्ण रूप से सम्भव नहीं है।

वेद की शिक्षा (वैदिक मौखिक एवं श्रुति परंपरा/वेद पाठ/वेद ज्ञान परम्परा) केवल धार्मिक शिक्षा नहीं है। यह कहना अनुचित होगा कि वेदों का अध्ययन केवल धार्मिक निर्देश है। वेद केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं हैं और इनमें केवल धार्मिक सिद्धान्त ही नहीं हैं, बल्कि वेद शुद्ध ज्ञान के कोष है, मानव जीवन की कुञ्जी वेदों में है इसलिए, वेदों में निर्देश या शिक्षा को केवल "धार्मिक शिक्षा/धार्मिक निर्देश" के रूप में नहीं माना जा सकता है।

2004 की सिविल अपील संख्या 6736 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय (AIR 2013: 15 SCC 677); (निर्णय की दिनाङ्क- 3 जुलाई 2013), जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में यह स्पष्ट है कि वेद केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं हैं। वेदों में गणित, खगोल विज्ञान, मौसम विज्ञान, रसायन विज्ञान, हाइड्रोलिक्स, भौतिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी, कृषि, दर्शन, योग, शिक्षा, काव्यशास्त्र, व्याकरण, भाषा विज्ञान आदि के विषय सम्मिलित हैं, जिन्हें माननीय भारतीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रकाशित किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अनुपालन में प्रतिष्ठान एवं बोर्ड के माध्यम से वैदिक शिक्षा -

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भारतीय ज्ञान प्रणाली 'संस्कृत ज्ञान प्रणाली' के रूप में भी जाना जाता है, उनके महत्त्व और पाठ्यक्रम में उनका समावेश और विविध विषयों के संयोजन में लचीले दृष्टिकोण को मजबूती से प्रदर्शित किया गया है। कला एवं मानविकी के छात्र भी विज्ञान सीखेंगे, प्रयास करना होगा कि सभी व्यावसायिक विषय और व्यावहारिक कौशलों (सॉफ्ट स्किल्स) को प्राप्त करें। कला, विज्ञान और अन्य क्षेत्रों में भारत की गौरवशाली परम्परा इस तरह की शिक्षा की ओर बढ़ने में

सहायक होगी। भारत की समृद्ध, विविध प्राचीन और आधुनिक संस्कृति और ज्ञान प्रणालियों और परम्पराओं को संयोजित करने और उससे प्रेरणा पाने हेतु यह नीति बनायी गयी है। भारत की शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य के महत्त्व, प्रासङ्गिकता और सुन्दरता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। संस्कृत, संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक भाषा है यदि सम्पूर्ण लैटिन और ग्रीक साहित्य को मिलाकर भी इसकी तुलना की जाए तो भी वह संस्कृत शास्त्रीय साहित्य की बराबरी नहीं कर सकता। संस्कृत साहित्य में गणित, दर्शन, व्याकरण, सङ्गीत, राजनीति, चिकित्सा, वास्तुकला, धातुविज्ञान, नाटक, कविता, कहानी, और बहुत कुछ (जिन्हें "संस्कृत ज्ञान प्रणालियों" के रूप में जाना जाता है) के विशाल भण्डार हैं । विश्व विरासत के लिए इन समृद्ध संस्कृत ज्ञान प्रणाली विरासतों को न केवल पोषण और भविष्य के लिए संरक्षित किया जाना चाहिए बल्कि हमारी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से शोध कराकर इन्हें बढ़ाते हुए नए उपयोगों में भी रखा जाना चाहिए। इन सबको हजारों वर्षों में जीवन के सभी क्षेत्रों के लोगों द्वारा, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के एक विस्तृत जीवन्त दर्शन के साथ लिखा गया है । संस्कृत को रूचिकर और अनुभावात्मक होने के साथ-साथ समकालीन रूप से प्रासङ्गिक विधियों से पढ़ाया जाएगा । संस्कृत ज्ञान प्रणाली का उपयोग विशेष रूप से ध्वनि और उच्चारण के माध्यम से है। फाउंडेशन और माध्यमिक स्कूल स्तर पर संस्कृत की पाठ्यपुस्तकों को संस्कृत के माध्यम से संस्कृत पढ़ाने (एस.टी.एस.) और इसके अध्ययन को आनन्ददायी बनाने के लिए सरल मानक संस्कृत (एस.एस.एस.) में लिखा जाना है। ध्वन्यात्मकता और उच्चारण वेदों की मौखिक परम्परा पर लागू होता है। वैदिक शिक्षा ध्वन्यात्मकता और उच्चारण पर आधारित है।

कला और विज्ञान के बीच, पाठ्यक्रम और पाठ्येतर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षणिक धाराओं, आदि के बीच कोई स्पष्ट विभेद नहीं किया गया है। सभी ज्ञान की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करने के लिए, एक बहु-विषयक दुनिया के लिए विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी और खेल के बीच एक बहु-विषयक (Multi-Disciplinary) एवं समग्र शिक्षा के विकास पर बल दिया गया है। नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य जैसे, सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतान्त्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक सम्पत्ति के

लिए सम्मान, वैज्ञानिक चिन्तन, स्वतन्त्रता, उत्तरदायित्व, बहुलतावाद, समानता और न्याय पर जोर दिया गया है ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु क्रं. 4.23 में अनिवार्य विषयों, कौशलों और क्षमताओं का शिक्षाक्रमीय एकीकरण के विषय में निर्देश है। विद्यार्थियों को अपने व्यक्तिगत पाठ्यक्रम को चुनने में बड़ी मात्रा में लचीले विकल्प मिलेगें, लेकिन आज की तेजी से बदलती दुनिया में सभी विद्यार्थियों को एक अच्छे, सफल, अनुभवी, अनुकूलनीय और उत्पादक व्यक्ति बनने के लिए कुछ विषयों, कौशलों और क्षमताओं को सीखना भी आवश्यक है। वैज्ञानिक स्वभाव और साक्ष्य आधारित सोच, रचनात्मकता और नवीनता, सौंदर्यशास्त्र और कला की भावना, मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति और संवाद, स्वास्थ्य और पोषण, शारीरिक शिक्षा, शारीरिक दक्षता, स्वास्थ्य और खेल, सहयोग और टीम वर्क, समस्या को हल करने और तार्किक चिन्तन, व्यावसायिक एक्सपोजर और कौशल, डिजिटल साक्षरता, कोडिंग और कम्प्यूटेशनल चिन्तन, नैतिकता और नैतिक तर्क, मानव और संवैधानिक मूल्यों का ज्ञान और अभ्यास, लिङ्ग संवेदनशीलता, मौलिक कर्तव्य, नागरिकता कौशल और मूल्य, भारत का ज्ञान, पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता, जिसमें पानी और संसाधन संरक्षण, स्वच्छता और साफ-सफाई, समसामयिक घटना और स्थानीय समुदायों, राज्यों, देश और दुनिया द्वारा जिन महत्त्वपूर्ण मुद्दों का सामना किया जा रहा है उनका ज्ञान, भाषाओं में प्रवीणता के अलावा, इन कौशलों में सम्मिलित है। बच्चों के भाषा कौशल संवर्धन के लिए और इन समृद्ध भाषाओं और उनके कलात्मक निधि के संरक्षण के लिए, सार्वजनिक या निजी सभी विद्यालयों में सभी छात्रों को भारत की एक शास्त्रीय भाषा और उससे सम्बन्धित साहित्य सीखने का कम से कम दो साल का विकल्प मिलेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु क्रं. 4.27 में "भारत का ज्ञान" के विषय में महत्त्वपूर्ण निर्देश है। "भारत का ज्ञान" में आधुनिक भारत और उसकी सफलताओं और चुनौतियों के प्रति प्राचीन भारत का ज्ञान और उसका योगदान - भारतीय ज्ञान प्रणाली जैसे गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि, इंजीनियरिंग, भाषा विज्ञान, साहित्य, खेल के साथ –साथ शासन, राजव्यवस्था, संरक्षण आदि जहाँ भी प्रासङ्गिक हो, विषयों में सम्मिलित किया जाएगा। इसमें औषधीय

प्रथाओं, वन प्रबन्धन, पारम्परिक (जैविक) फसल की खेती, प्राकृतिक खेती, स्वदेशी खेलों, विज्ञान और अन्य क्षेत्रों में प्राचीन और आधुनिक भारत के प्रेरणादायक व्यक्तित्वों पर ज्ञानदायी विषय हो सकेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु क्रं. 11.1 में समग्र और बहु-विषयक शिक्षा की ओर प्रवृत्त करने के निर्देश हैं। भारत में समग्र एवं बहु-विषयक विधि से सीखने की एक प्राचीन परम्परा पर बल दिया गया है, तक्षशिला और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों के उल्लेख सहित 64 कलाओं के ज्ञान के रूप में गायन और चित्रकला, वैज्ञानिक क्षेत्र जैसे रसायनशास्त्र और गणित, व्यावसायिक क्षेत्र जैसे बढ़ई का काम और कपड़े सिलने का कार्य, व्यावसायिक कार्य जैसे औषधि तथा अभियान्त्रिकी और साथ ही साथ सम्प्रेषण, चर्चा और वाद-संवाद करने के व्यावहारिक कौशल (सॉफ्ट स्किल्स) भी सम्मिलित है । यह विचार है कि गणित, विज्ञान, व्यावसायिक विषयों और सॉफ्ट स्किल सहित रचनात्मक मानव प्रयास की सभी शाखाओं को 'कला' माना जाना चाहिए, जिसका मूल भारत है। 'कई कलाओं के ज्ञान' या जिसे आधुनिक समय में प्राय: 'उदार कला' कहा जाता है (अर्थात्, कलाओं की एक उदार धारणा) की इस धारणा को भारतीय शिक्षा में वापस लाया जाना चाहिए, क्योंकि यह ठीक उसी तरह की शिक्षा है जो 21वीं सदी के लिए आवश्यक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु क्रं. 22.1 में भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का संवर्धन हेतु निर्देश हैं। भारत संस्कृति का समृद्ध भण्डार है – जो हजारों वर्षों में विकसित हुआ है, और यहाँ की कला, साहित्यिक कृतियों, प्रथाओं, परम्पराओं, भाषायी अभिव्यक्तियों, कलाकृतियों, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के स्थलों इत्यादि में परिलक्षित होता हुआ दिखता है। भारत में भ्रमण, भारतीय अतिथि सत्कार का अनुभव होना, भारत के आकर्षक हस्तशिल्प एवं हाथ से बने कपड़ों को खरीदना, भारत के प्राचीन साहित्य को पढ़ना, योग एवं ध्यान का अभ्यास करना, भारतीय दर्शनशास्त्र से प्रेरित होना, भारत के अनुपम त्यौहारों में भाग लेना, भारत के वैविध्यपूर्ण सङ्गीत एवं कला की सराहना करना और भारतीय फिल्मों को देखना आदि ऐसे कुछ आयाम हैं जिनके माध्यम से दुनिया भर के करोड़ो लोग प्रतिदिन इस सांस्कृतिक विरासत में सम्मिलित होते हैं, इसका आनन्द उठाते हैं और लाभ प्राप्त करते हैं।

यही सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक सम्पदा है भारत की इस सांस्कृतिक सम्पदा का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार, देश की उच्चतर प्राथमिकता होनी चाहिए क्योंकि इस देश की पहचान के साथ-साथ इसकी अर्थव्यवस्था के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु क्रं. 22.2 में कलाओं के विषय में निर्देश हैं। भारतीय कला एवं संस्कृति का संवर्धन राष्ट्र एवं राष्ट्र के नागरिकों के लिए महत्त्वपूर्ण है । बच्चों में अपनी पहचान और अपनेपन के भाव तथा अन्य संस्कृतियों और पहचानों की सराहना का भाव पैदा करने के लिए सांस्कृतिक जागरूकता और अभिव्यक्ति जैसी प्रमुख क्षमताओं को बच्चों में विकसित करना जरूरी है। बच्चों में अपने सांस्कृतिक इतिहास, कला, भाषा एवं परम्परा की भावना और ज्ञान के विकास द्वारा ही एकता, सकारात्मक सांस्कृतिक पहचान और आत्म-सम्मान निर्मित किया जा सकता है । अत: व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण के लिए सांस्कृतिक जागरूकता और अभिव्यक्ति का योगदान महत्त्वपूर्ण है ।

प्रतिष्ठान की मुख्य वैदिक शिक्षा (वेदों की श्रुति या मौखिक परम्परा/वेद पाठ/वैदिक ज्ञान परम्परा) सहित अन्य आवश्यक आधुनिक विषय- संस्कृत, अंग्रेजी, मातृभाषा, गणित, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान, दर्शन, योग, वैदिक कृषि, भारतीय कला, SUPW आदि महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड की पाठ्य पुस्तकों की नींव/स्त्रोत भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) विषयों की अनुप्रविष्टि (इनपुट) पर आधारित हैं। ये सभी निर्देश राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दिशानिर्देशों के अनुरूप है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन के शैक्षिक चिन्तकों, प्राधिकरणों के परामर्श एवं नीति को ध्यान में रखते हुए प्रारूप पुस्तकें पीडीएफ फॉर्मेट में उपलब्ध करायी गयी हैं। इन पुस्तकों को भविष्य में NCF के अनुरूप अद्यतन किया जाएगा और अन्त में प्रिन्ट रूप में उपलब्ध कराया जाएगा।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन के राष्ट्रीय आदर्श वेदविद्यालय के अध्यापक महानुभावों ने, वेद अध्यापन (वैदिक मौखिक एवं श्रुति परम्परा/वेद पाठ/वेद ज्ञान परम्परा) में समर्पित आचार्यों ने, सम्बद्ध वेद पाठशालओं के संस्कृत एवं आधुनिक विषयों के अध्यापकों ने, आधुनिक विषय पाठ्यपुस्तकों को इस रूप में प्रस्तुत करने में पिछले दो वर्षों में अथक परिश्रम किया है। उन सभी को हृदय की गहराई से धन्यवाद समर्पण करता हूँ। राष्ट्र स्तर के विविध विशेषज्ञों ने

समय-समय पर पधार कर पाठ्यपुस्तकों में गुणवत्ता लाने में विशेष सहायता प्रदान की है। उन सभी विशेषज्ञों एवं विद्यालयों के अध्यापक महानुभावों को भी धन्यवाद अर्पित करता हूँ। अक्षर योजना हेतु, चित्राङ्कन हेतु, पेज सेटिंग हेतु मेरे सहयोगी कर्मचारियों ने कार्य किया है, उन सभी को हृदय की गहराई से कृतज्ञता समर्पण करता हूँ।

पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए रचनात्मक आलोचना सहित सभी सुझावों का स्वागत है।

आपरितोषात् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानाम् आत्मन्यप्रत्ययं चेतः॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् १.०२)

(जब तक विद्वानों को पूर्ण सन्तुष्टि न हो जाए तब तक विशिष्ट प्रयोग को सब तरह से सफल नहीं मानता क्योंकि प्रयोग में विशेष योग्यता प्राप्त विद्वान भी पहले प्रयोग के सफलता में आश्वस्त नहीं रहता है।)

प्रो. विरूपाक्ष वि जड्डीपाल्
सचिव
महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

प्राक्कथन

कक्षा वेदविभूषण प्रथम वर्ष/उत्तरमध्यमा-I/ स्कूली शिक्षा में कक्षा 11वीं के लिए भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा एवं प्रयोग की प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अनुपालन में प्रकाशित की गई है इस पाठ्यक्रम में प्राकृतिक संसाधन, वैदिक वाङ्मय में जैव विविधता, द्रव्य पदार्थ, सजीव जगत जैसे विषय सम्मिलित किए गए हैं । हमने पाठ्यक्रम में दैनिक जीवन से सम्बन्धित वैज्ञानिक अवधारणाओं को सम्मिलित करने का प्रयास किया है यह पुस्तक क्रियाकलाप पर आधारित है, जिसके माध्यम से यह अपेक्षित है कि विद्यार्थी स्वतः ज्ञान का अर्जन कर सके ।

इस पाठ्यपुस्तक के द्वारा छात्रों को संस्कृत वाङ्मय की व्यापक वैज्ञानिक चिन्तन परम्परा से आधुनिक विज्ञान को जोड़कर, प्राचीन भारतीय मनीषियों (आर्यभट्ट, वराहमिहिर, बोधायन, चरक, सुश्रुत, पराशर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि, दत्ता, माधव, पाणिनि, पतञ्जलि, नागार्जुन, गौतम, पिङ्गल, शङ्करदेव, मैत्रेयी, गार्गी और तिरुवल्लुवर आदि) के विशिष्ट योगदान से परिचित कराया जाएगा ।

वेदों में निहित विज्ञान की सङ्कल्पनाओं को आधुनिक विज्ञान से जोड़कर छात्रों को अवगत कराया जाएगा । आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों और उनके अनुप्रयोगों का उल्लेख हमारे संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध है तथा उनका समन्वय आधुनिकतम वैज्ञानिक नियमों से किया जा सकता है । इतना ही नहीं, इन ग्रन्थों का विशद अध्ययन, अवलोकन और विवेचन करके नए सिद्धान्तों की सङ्कलपना भी की जा सकती है । इस अवधारणा को मानते हुए छात्रों एवं जिज्ञासुओं में इस पुस्तक को पढ़ कर शोध के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होगी, इस आशा के साथ इस पुस्तक की रचना की गई है ।

अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए, जहाँ कहीं भी आवश्यक है, हल किए गए उदाहरण भी दिए गए है । विद्यार्थियों के विषय की समझ को जाँचने के लिए प्रत्येक पाठ के अन्त में अभ्यास प्रश्न शामिल किए हैं जिनमें बहुविकल्पीय प्रश्न, वर्णनात्मक प्रश्नों को रखा है । पुस्तक के अन्त में मॉडल प्रश्न पत्रों को शामिल किया है जिससे विद्यार्थी अपना स्वतः मूल्याङ्कन कर सके।

विषयानुक्रमणिका

क्रमाङ्क	अध्याय	पृष्ठ क्रमाङ्क
1	ग्रह नक्षत्र एवं खगोल विज्ञान	1 - 14
2	पर्यावरण संरक्षण पर आधारित पारम्परिक ज्ञान	15 - 26
3	प्राचीन भारतीय कृषि प्रणाली	27 - 39
4	भारतीय वास्तुशास्त्र कला एवं चित्रसूत्र	40 - 50
5	प्राचीन भारत में व्यापार और वाणिज्य	51 - 61
6	प्राचीन भारतीय व्यवहार एवं चिन्तन पध्दति	62 - 69
7	जल शोधन एवं मौसम विज्ञान	70 - 80
8	यज्ञ विद्या	81 - 99
9	प्राचीन भारतीय प्रौद्योगिकी	100 - 123
10	भारतीय आहार पद्धति	124 - 150
	मॉडल प्रश्न पत्र	151 - 162

अध्याय 1

ग्रह नक्षत्र एवं खगोल विज्ञान

अध्ययन बिन्दु

1.1 भारतीय खगोल विज्ञान का आरम्भ

1.2 सिद्धान्त काल

1.3 भारतीय वेधशालाएँ

1.4 ऐतरेय ब्राह्मण में सूर्योदय - सूर्यास्त की व्याख्या

1.5 भारतीय खगोलविदों का विश्व पर प्रभाव

1.6 नक्षत्रों के नाम एवं तारों की संख्या

1.1 भारतीय खगोल विज्ञान का आरम्भ -

तिथियों का ह्रास - वृद्धि -

भारत में पहली खगोलीय वस्तु 12 हजार वर्ष पूर्व अण्डमान द्वीप से प्राप्त हुई। यह लकड़ी की बनी कैलेण्डर स्टिक थी, जिस पर अमावस्या से पूर्णिमा तक चन्द्रमा की डिस्क की स्पष्ट वृद्धि (वैक्सिंग) और पूर्णिमा से अमावस्या तक चन्द्रमा की डिस्क की स्पष्ट कमी (वेनिंग) अंकित थी।

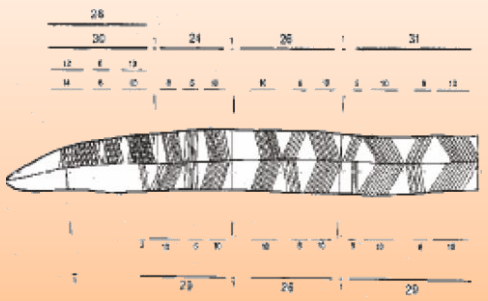

चित्र -1.1 केलेंडर स्टिक

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः॥

(अथर्व. 7.86.2)

चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा को उत्पन्न होता है एवं एक-एक कला बढा कर नया-नया होता है। अर्थात् आकृति में बढ़ता है एवं चन्द्रमा मास की तिथियों को बताता है। इस प्रकार चन्द्रमा के प्रकाश के घटने एवं बढ़ने का उल्लेख अथर्ववेद के इस मन्त्र से प्राप्त होता है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषियों ने चन्द्रमा की आकृति के बढने एवं घटने की घटना का अध्ययन करके तिथियों, मास एवं ऋतुओं का निर्धारण किया। इस मन्त्र से प्रकाश के परावर्तन की घटना का आधार प्राप्त होता है।

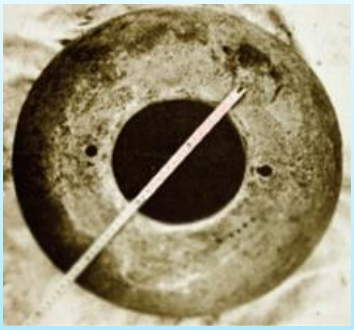

चित्र -1.2 रिंग स्टोन

सिन्धु घाटी सभ्यता के शहर मोहनजोदडो से खुदाई के दौरान रिंग स्टोन प्राप्त हुआ जिस पर ड्रिल किए गए छोटे छिद्रों की पंक्तियाँ थी जो वर्ष में सूर्योदय के अलग-अलग समय को बताते थे।

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥

(ऋग्वेद. 1.164.11)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र में एक वर्षचक्र में 12 आरे (मास) का उल्लेख मिलता है। यह समय चक्र द्युलोक में निरन्तर घूमता है। यह भी उल्लेख है कि एक वर्ष में 360 दिन और 360 रात्रि मिलकर 720 अहोरात्र होते हैं।

ऋग्वेद में एक वर्ष को 360 दिनों का माना गया जिसे बारह बराबर भागों में विभाजित किया गया। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषियों ने सूर्य के बारह अरों वाले पहिए को देखकर एक वर्ष को बारह बराबर भागों (मासों) में विभाजित किया इस मन्त्र से हमें कालगणना का आधार प्राप्त हुआ।

सँवत्सरोसि परिवत्सरोसीदावत्सरोसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोसि।

उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ता ँ सँवत्सरस्ते कल्पताम्॥

(यजुर्वेद. 27.45)

सौर वर्ष एवं चन्द्र वर्ष में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रत्येक पाँच साल को युग माना गया।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।

अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम्॥

(ऋग्वेद. 1.164.12)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र में 5 चरणों वाली ऋतु, 12 मास एवं सूर्य की 7 किरणों का उल्लेख है। इस ऋग्वेदीय मन्त्र से हमें ऋतुओं के परिवर्तन एवं सूर्य की 7 किरणों के बारे में पता चला।

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा।

तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः॥

(ऋग्वेद. 1.164.13)

पाँच ऋतुरूपी आरों वाला सूर्य का संवत्सररूपी चक्र अपने केन्द्र पर निरन्तर घूर्णन करता है जिससे ऋतु परिवर्तन होता है, इस मन्त्र में 5 ऋतुओं का उल्लेख किया गया हैं।

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः।

वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः॥

(ऋग्वेद. 10.85.5)

ऋग्वेद का कथन है कि वर्ष की गणना का आधार मास है। वर्ष की आकृति (परिमाण) के ज्ञान के लिए मास का बोध आवश्यक है।

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः।

(ऋग्वेद. 10.189.3)

अहोरात्र (दिन-रात) के लिए धाम शब्द का प्रयोग किया है। 30 धाम (अहोरात्र) का उल्लेख है।

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।

सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम॥

(ऋग्वेद. 1.164.3)

सप्तचक्र रथ को सात घोड़े खीचते हैं। रथ के चलने से 7 किरणे अपना प्रकाश फैलाती हैं। 7 किरणे अर्थात् 7 दिनों का उल्लेख हैं। इस ऋग्वेदीय मन्त्र से हमें 1 सप्ताह में 7 दिन होते हैं इस बारे में जानकारी प्राप्त हुई।

सूर्यग्रहण -

यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥

(ऋग्वेद. 5.40.5)

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमान अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः॥

(ऋग्वेद. 5.40.6)

ऋग्वेद में सूर्यग्रहण का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है एवं सूर्यग्रहण की तुरीय यन्त्र से देखने का उल्लेख हैं। इस यन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषियों ने तुरीय यन्त्र की सहायता से सूर्यग्रहण की घटना को देखा। इस ऋग्वेदीय मन्त्र से प्रकाश के परावर्तन की घटना का आधार प्राप्त हुआ।

छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूच्छाया ।

(आर्यभट्टीय 37)

पृथिवी की बड़ी छाया जब चन्द्रमा पर पड़ती है, तो चन्द्रग्रहण होता है । जब चन्द्रमा पृथिवी एवं सूर्य के मध्य आ जाता है तब सूर्यग्रहण होता है ।

यजुर्वेद में एक चन्द्र वर्ष 354 दिनों का तथा सौर वर्ष 365 दिनों का माना गया।

षड्ऋतु -

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥

(अथर्व. 6.55.2)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में वर्ष को 6 ऋतुओं में विभाजित किया गया है। प्रत्येक ऋतु 2 माह की थी।

नक्षत्र -

अथर्ववेद में 27 नक्षत्रों के बारे में भी बताया गया हैं।

यानि नक्षत्राणि दिव्यऽन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।

प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु॥

अथर्व. 19.8.1

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में अन्तरिक्ष में उदित होने वाले विभिन्न नक्षत्रों के बारे में बताया गया है । नक्षत्र हमें सुख प्रदान करते हैं इस प्रकार का उल्लेख है।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।

योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥

अथर्व. 19.8.2

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में अट्ठाईस नक्षत्रों के बारे में बताया गया है। कृतिका से भरणी तक नक्षत्रों के बारे में बताया गया है।

जौ द्रा गः खे श्वेऽही रो षा चिन् मू ष ण्यः सू मा धा णः।

रे मृ द्याः स्वा ऽऽपो ऽजः कृ ष्योः ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः॥

(याजुष ज्योतिष. 14)

इसमे एक ही मन्त्र में 27 नक्षत्रों के नाम दिये हैं। प्रत्येक नक्षत्र का आदि, मध्य या अन्त का एक अक्षर लिया गया हैं।

यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में नक्षत्रों का उल्लेख मिलता है ।

कृत्तिका नख्षत्रमग्निर्देवताऽग्रे रुचस्स्थ प्रजापतेद्धातुस्सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नख्षत्रं प्रजापतिर्देवता मृगशीर्षन्नख्षत्र सोमो देवताऽऽद्रा नख्षत्र रुद्रो देवता पुनर्वसू नख्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो नख्षत्रं बृहस्पतिर्देवताऽऽश्रेषा नख्षत्रं सर्पा देवता मघा नख्षत्रम्पितरो देवता फल्गुनी नख्षत्र मर्यमा देवता फल्गुनी नख्पत्रं भगो देवता हस्तो नख्षत्रं सविता देवता चित्रा नख्षत्रमिन्द्रो देवता स्वाती नख्षत्रँव्वायुर्देवता विशाखे नख्षत्रमिन्द्राग्नी देवताऽनूराधा नख्षत्रं मित्रो देवता रोहिणी नख्षत्रमिन्द्रो देवता विचृतौ नख्षत्रं पितरो देवताऽषाढा

नख्पत्रमापो देवताऽषाढा नख्षत्रं विश्वे देवा देवता श्रोणा नख्षत्रं विष्णुर्देवता श्रविष्टा नख्षत्रं वसवो देवता शतभिषङ्नख्षत्रमिन्द्रो देवता प्रोष्ठप्रदा नख्षत्रमज एकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नख्षत्रमहिर्बुद्ध्नियो देवता रेवती नख्षत्रम्पूषा देवताऽश्वयुजौ नख्षत्रमश्विनौ देवताऽपभरणीर्नख्षत्रँय्यमो देवता पूर्णा पश्चाद्यत्ते देवा अदधुः ॥

(तैत्तिरीय संहिता 4.4.10)

तैत्तिरीय संहिता के इस मन्त्र में 28 नक्षत्रों के नाम का उल्लेख है जैसे – कृत्तिका, रोहिणी, मृगक्षिरा, आद्रा, पुनवर्सु, तिष्य, आश्लेषा, मघा, फाल्गुनी (उत्तरा फाल्गुनी), फाल्गुनी (पूर्वा फाल्गुनी), हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, रोहिणी , विचृतौ, अषाढ़ा (उत्तराषाढ़ा), अषाढ़ा (पूर्वाषाढ़ा), श्रोणा, श्रविष्ठा, शतभिषङ, प्रोष्ठपदा, प्रोष्ठपदा, रेवती, अश्वयुजौ, अपभरणीर्नस ।

मैत्रायणी संहिता के 2.13.20 एवं कठक संहिता के 39.13 में 28 नक्षत्रों का उल्लेख किया गया है । कुछ नक्षत्रों को अन्य नाम से भी बताया गया है ।

अथर्ववेद की शौनक संहिता में भी नक्षत्रों के विषय में उल्लेख है ।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमाद्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥

(अथर्ववेद 19.2.5)

अथर्ववेद के इस मन्त्र में 27 नक्षत्रों के नाम का उल्लेख है जैसे – कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आद्रा, पुनर्वसू, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखे, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजीत, श्रवण, श्रविष्ठाः, शतभिषङ, द्वया प्रोष्ठपदा, रेवती, अश्वयुजौ, भरण्य ।

सूर्य सिद्धांत के 8.2.21 के श्लोक में भी 28 नक्षत्रों के नाम का उल्लेख किया गया है ।

लगध ऋषि का वेदाङ्ग ज्योतिष -

वैदिक यज्ञों के अनुष्ठान का समय निश्चित करने के लिए लगध ऋषि द्वारा रचित वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थ का उपयोग किया जाता था, यह पहला भारतीय वैज्ञानिक पाठ है। भारतीय विद्वानों ने 12 वीं शताब्दी तक नक्षत्र दिवस की लम्बाई ज्ञात कर ली थी।

नक्षत्र दिवस - पृथिवी द्वारा किसी भी तारे के सम्बन्ध में एक चक्कर पूरा करने में लगा समय नक्षत्र दिवस कहलाता है। यह समय 23 घण्टे 56 मिनट 4.6 सेकेण्ड प्राप्त हुआ हैं। जबकि गणना करने पर समय 23 घण्टे 56 मिनट 4.091 सेकण्ड प्राप्त हुआ । दोनों मानों के बीच छोटा अन्तर है इतना सटीक समय आरम्भिक काल में प्राप्त कर लिया था।

अधिकमास -

वेदाङ्ग ज्योतिष में अधिक मास का उल्लेख प्राप्त होता हैं। सौर वर्ष और चन्द्र वर्ष में सामंजस्य स्थापित करने के लिए हर तीसरे वर्ष एक चन्द्रमास की वृद्धि कर दी जाती है जिसे अधिकमास कहते हैं।

पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्त्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः॥

(अथर्व. 5.6.4)

अथर्ववेद के इस मन्त्र में त्रयोदश मास का उल्लेख किया गया हैं।

1.2 सिद्धान्त काल -

यह समय भारतीय खगोलिकी का स्वर्ण युग माना जाता है।

1. **आर्यभट्ट प्रथम** - खगोलशास्त्र का क्रमबद्ध इतिहास आर्यभट्ट के समय से मिलता है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ "**आर्यभट्टीय**" में समय की इकाईयों तथा आकाशीय पिण्डों का वर्णन हैं। इनके ग्रन्थ में सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, शनि, गुरु, मंगल, शुक्र, बुध के महायुगीय भगणों की संख्या भी दी है।

इसमें तारों के स्थिर होने तथा पृथिवी के घूर्णन के कारण दिन और रात होने की घटना का उल्लेख मिलता हैं। आर्यभट्ट ने सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की तथा पृथिवी का व्यास 1050 योजन बताया।

1 योजन ≅ 13.6 किलोमीटर

2. **वराहमिहिर** - वराहमिहिर द्वारा रचित पञ्चसिद्धान्तिक ग्रन्थ का खगोलविज्ञान के क्षेत्र में विशेष महत्त्व हैं। इसमें वर्णित पाँच सिद्धान्तों के अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि किस प्रकार भारतीय ज्योतिष धीरे-धीरे विकसित होकर सूर्य सिद्धान्त के रुप में परिवर्तित हुआ। इस ग्रन्थ में पाँच वर्ष का एक युग माना गया था तथा सूर्य आदि आकाशीय पिण्ड सदा समान वेग से चलते हुए माने जाते थे और दिन समान रुप से बढता हुआ माना जाता था। इसमें सूर्य-चन्द्रमा की स्थिति नक्षत्रों से बताई गई हैं। उत्तरायण का आरम्भ सूर्य के धनिष्ठा नक्षत्र के आदि बिन्दु पर था। इन सब में सूर्य व चन्द्रमा की स्पष्ट गतियों को बताया गया है। त्रैलोक्य संस्थान नामक अध्याय में कहा है कि पञ्चमहाभूतों से बनी पृथिवी गोल तारों के पञ्चर (ठठरी) में उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार चुम्बकों के बीच लोहा है। इसमें पृथिवी और अन्तरिक्ष का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त, पृथिवी के अक्षभ्रमण, चन्द्रमा की कलाओं के घटने व बढने का वर्णन हैं।

3. **ब्रह्मगुप्त** - ब्रह्मगुप्त द्वारा रचित ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में ग्रहों की मध्यम गति की गणना, स्पष्टाधिकार में ग्रहों की स्पष्ट गति निकालने की रीति, ज्या और त्रिज्या का मान निकालना वर्णित हैं। त्रिप्रश्नाधिकार में दिशा, देश और काल निकालने की विधि बताई गयी है तथा सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण निकालने की रीति वैज्ञानिक रुप से बतायी गयी है। उदयस्ताधिकार में चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र और शनि ये सूर्य के कितने पास जाने पर अस्त हो जाते हैं और कितनी दूरी पर उदय होते हैं। इसका वर्णन है। चन्द्रच्छायाधिकार में उदय और अस्त होते हुए चन्द्रमा के वेध से छाया आदि का ज्ञान करने की रीति हैं।

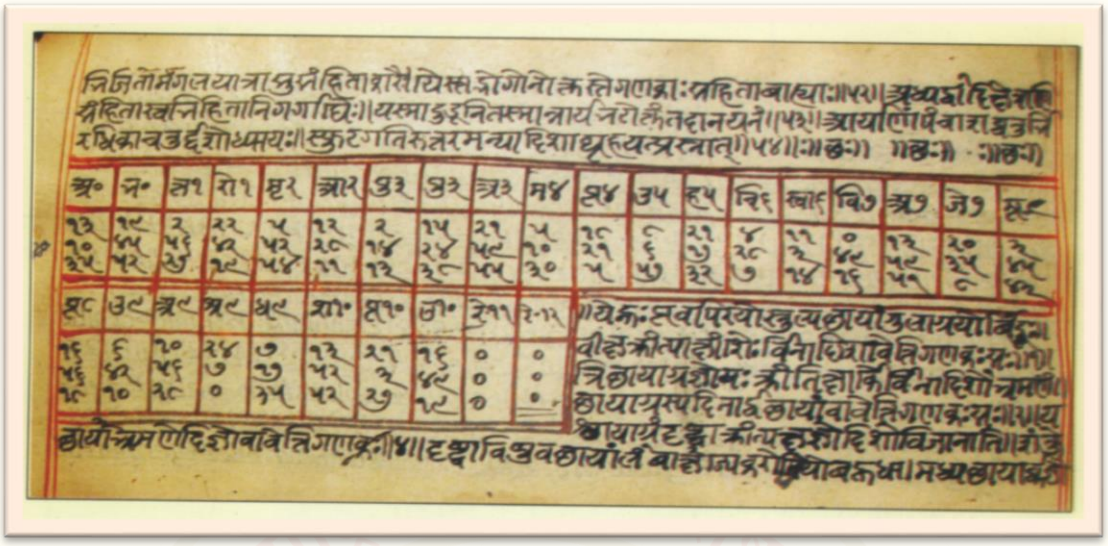

चित्र -1.3 ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की पाण्डुलिपि

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त से हमें कई खगोलीय उपकरणों के बारे में जानकारी मिली उनमें से एक पानी की घड़ी जिसे घटी यन्त्र भी कहते हैं, जिसमें सबसे नीचे एक छोटा छिद्र होता है इसे पानी में रखने पर ठीक 24 मिनट बाद यह पानी में डूब जाती है तथा अन्य उपकरणों में एक लम्बवत् रखी हुई छोटी छड़ी जो अपनी छाया की गति के अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाती है तथा एक आधा - डिस्क तथा कैंची की तरह दिखने वाला कम्पास आदि का भी खगोलीय घटनाओं के अध्ययन के लिये उपयोग किया जाता था।

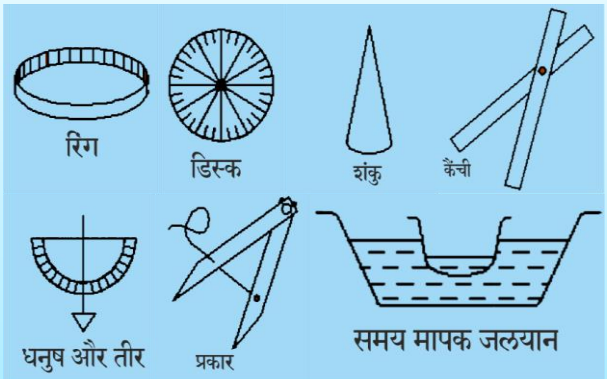

चित्र -1.4 खगोलीय उपकरण

4. **भास्कराचार्य** - इन्होनें चार प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की जो निम्न हैं - सिद्धान्त शिरोमणि, लीलावती, बीजगणित और करणकुतूहल इनमें से सिद्धान्त शिरोमणि और करणकुतूहल खगोलीय विषयों को तथा लीलावती, बीजगणित गणित के विषय को प्रतिपादित करते हैं। सिद्धान्त शिरोमणि के दो भाग है - गणिताध्याय तथा गोलाध्याय।

गोलाध्याय में आकाश तारामण्डल का वर्णन है। इस ग्रन्थ में विश्व का स्वरूप, ग्रहों और नक्षत्रों की कक्षाएँ तथा पृथिवी में आर्कषण शक्ति का वर्णन है तथा ग्रहों की गतियाँ बतायी है। सूर्योदय का समय जानने की रीति तथा दिनमान ज्ञात करना बताया है। इसमें अक्षांश और लम्बांश जानने की भी रीति है तथा ग्रहण की गणना तथा चन्द्रमा का शृंग (नोक) किस दिशा में कितना ऊँचा है, उसका वर्णन दिया गया है। इनके द्वितीय ग्रन्थ करण कुतूहल में ग्रहों की गणना के लिए सुगम रीतियाँ बतायी गयी है।

1.3 भारतीय वेधशालाएँ -

खगोलीय घटनाओं का अध्ययन करने के लिए 17 वीं शताब्दी में महाराजा सवाई जयसिंह ने वेधशालाओं का निर्माण करवाया, जिसे जन्तर-मन्तर नाम दिया गया। भारत में जन्तर-मन्तर (वेधशालाएँ) 5 स्थानों पर स्थित है। सबसे पहली वेधशाला दिल्ली में बनी। इसके बाद क्रमशः जयपुर, मथुरा, उज्जैन, वाराणसी (बनारस) में वेधशालाओं का निर्माण करवाया गया।

चित्र -1.5 जन्तर मन्तर, उज्जैन

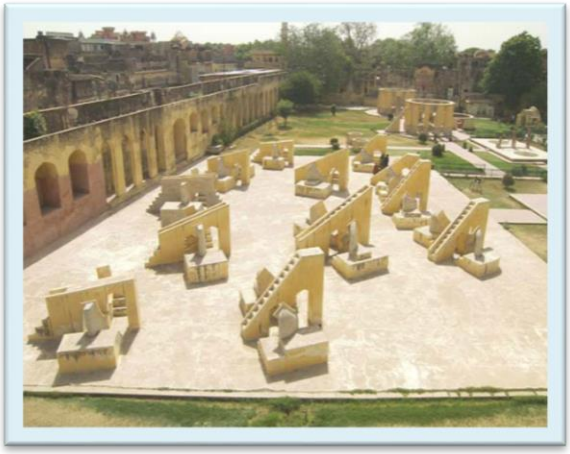

चित्र -1.6 जन्तर मन्तर, जयपुर

ग्रहों की गति मापने के लिए यहाँ विभिन्न प्रकार के उपकरण लगाए गए है।

(क) **सम्राट यन्त्र** – यह सूर्य की सहायता से समय और ग्रहों की स्थिति की जानकारी देता है।

(ख) **दिशा यन्त्र** – यह यन्त्र दिशाओं के बारे मे बताता हैं ।

(ग) **राम यन्त्र** और **जयप्रकाश यन्त्र** खगोलीय पिण्डों की गति के बारे में बताता है।

1.4 ऐतरेय ब्राह्मण में सूर्योदय-सूर्यास्त की व्याख्या -

(क) स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति, नोदेति। *(ऐतरेय ब्रा. 3.44)*

(ख) स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमयति, नोदयति। *(गोपथ ब्रा.2.4.10)*

सूर्य कभी अस्त या उदित नहीं होता हैं। पृथिवी के अपने अक्ष पर घूर्णन के कारण सूर्योदय एवं सूर्यास्त की घटना घटित होती है। पृथिवी के अपने अक्ष पर घूर्णन करते समय पृथिवी का जो भाग सूर्य के सामने होता है वहाँ दिन होता है एवं पृथिवी का जो भाग सूर्य की विपरीत दिशा में होता है वहाँ रात होती है।

तत्सूर्यस्य देवत्व तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततं सं जभार

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै। *(ऋग्वेद 1.115.4)*

सूर्यास्त के विषय में यजुर्वेद संहिता का यह मन्त्र बताता है कि दिवस के मध्य का अथवा कार्य करने वालों के मध्यकाल में ही सूर्य अपना विस्तृत प्रकाश को समेट लेता है, जिस समय सूर्य अपने घोड़े या रश्मियों को आकाश से समेटता है उसी समय रात्रीदेवी अपना कृष्णवर्ण का वस्त्र को फैला देती है। फलस्वरुप वह काल सूर्यास्त काल या रात्रिकाल नाम से जाना जाता है।

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम्।

अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि॥

(अथर्व. 13.2.32)

अथर्ववेद के इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि सूर्य की ऊर्जा (प्रकाश) के फैलने के कारण ही दिन एवं रात होते हैं।

1.5 भारतीय खगोलविदों का विश्व पर प्रभाव -

भारतीय खगोलविद सैद्धान्तिक मॉडल की तुलना में गणितीय पद्धति का अधिक उपयोग करते थे। इसी पद्धति के द्वारा उन्होनें ग्रहों की स्थिति एवं ग्रहण से सम्बन्धित सटीक परिणाम प्राप्त किए। भारतीय खगोलिकी से यूरोपीय खगोलविद् बहुत अधिक प्रभावित हुए और वे भारत में रुककर भारतीय खगोलिकी का अध्ययन करने लगे।

1.6 नक्षत्रों के नाम एवं तारों की संख्या -

नक्षत्रों का क्रम कृत्तिका से प्रारम्भ होकर भरणी तक होता है।

सारणी 1.1 -

नक्षत्र	तारों की संख्या	देवता	नक्षत्र	तारों की संख्या	देवता
कृत्तिका	6	अग्निः	अनुराधा	4	मित्रः
रोहिणी	1	प्रजापतिः	ज्येष्ठा	1	
मृगशिरा	3	सोमः	मूल	7	
आर्द्रा	1	रूद्रः	पूर्वाषाढ़ा	4	आपः
पुनर्वसु	2	अदितिः	उत्तराषाढ़ा	4	विश्वेदेवाः
पुष्य	1	बृहस्पतिः	अभिजित	1	
आश्लेषा	6	सर्पः	श्रवण	3	विष्णुः
मघा	6	पितरः	धनिष्ठा	5	
पूर्वाफाल्गुनी	2	अर्यमा	शतभिषा	1	इन्द्रः
उत्तराफाल्गुनी	2	भगाः	पूर्वाभाद्रपद	2	अजएकपात्
हस्त	5	सविता	उत्तराभाद्रपद	2	अहि र्बुद्ध्निय
चित्रा	1	इन्द्रः	रेवती	1	पूषा
स्वाति	1	वायुः	अश्विनी	2	अश्विनौ
विशाखा	2	इन्द्राग्नी	भरणी	3	यमः

अभ्यास कार्य

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) कृत्तिका नक्षत्र के तारों की संख्या है –

अ) 6 ब) 5

स) 4 द) 3

(2) जंतर-मंतर स्थित है –

अ) उज्जैन में ब) इन्दौर में

स) उदयपुर में द) आगरा में

(3) एक वर्ष में मास होते हैं –

अ) 12 ब) 13

स) 11 द) 10

प्र.2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(1) आचार्य लगध ने.....ग्रन्थ की रचना की।

(2) ऋग्वेद में सौर वर्ष.....दिनों का माना गया।

(3) श्रवण नक्षत्र के तारों की संख्या.....हैं ।

प्र.3 सही या गलत बताइए –

(1) पृथिवी के अपने अक्ष पर घूर्णन की घटना के कारण सूर्योदय एवं सूर्यास्त होते हैं।

(2) ऋग्वेद में 1 वर्ष 360 दिनों का माना गया।

(3) सौर वर्ष एवं चन्द्र वर्ष में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अधिकमास की वृद्धि की जाती है।

प्र.4 सही जोड़ी मिलान कीजिए -

(1) रिंग स्टोन – आर्यभट्ट

(2) सवाई जयसिंह – ब्रह्मगुप्त

(3) घटीयन्त्र – मोहनजोदडो

(4) आर्यभट्टीय – जल घड़ी

(5) ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त – जन्तर-मन्तर

प्र.5 अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) भारत में पहली खगोलीय वस्तु कैलेण्डर स्टिक किस स्थान से प्राप्त हुई?

(2) पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ के रचनाकार का क्या नाम है ?

(3) आकाश तारामण्डल का उल्लेख किस ग्रन्थ में हैं?

प्र.6 लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) नक्षत्र दिवस किसे कहते हैं ?

(2) जन्तर-मन्तर किन स्थानों पर स्थित हैं?

(3) ऋग्वेद की खगोलीय सामग्री क्या हैं ?

प्र.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) खगोलशास्त्र में आर्यभट्ट के योगदान के बारे में बताइए ।

परियोजना कार्य

अपने गुरुजी के साथ निकटतम जन्तर-मन्तर या तारामण्डल जाकर वहाँ स्थित यन्त्रों के बारे में जानकारी सङ्ग्रहित कीजिए एवं उनके कार्यों को जानिए।

अध्याय - 2

पर्यावरण संरक्षण पर आधारित पारम्परिक ज्ञान

अध्ययन बिन्दु

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रकृति

2.3 वनस्पति और जीव

2.4 नदी एवं सरोवर

2.5 वेदों में पञ्चतत्त्वों से प्रकृति सन्तुलन

2.1 प्रस्तावना -

भारत में पर्यावरण के प्रति सम्मान और संरक्षण की महती परम्पराएँ रही है। पर्यावरण संरक्षण में भारतीय धर्म एवं हमारे वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हमारे ऋषियों ने धर्मग्रन्थों के माध्यम से ऐसे दिशानिर्देशों का प्रसार किया, जिससे मनुष्य एवं प्रकृति के बीच अपनेपन की भावना का विकास हो। आज जब सम्पूर्ण विश्व पारिस्थितिक असन्तुलन के गम्भीर संकट से गुजर रहा है, तब हमें पर्यावरण और उसके महत्त्व के अध्ययन के लिए वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय को जानना अत्यन्त आवश्यक हैं।

नमो वृक्षेभ्यः। *(यजु. 16.17)*

वृक्षों के लिए हमारा आदर भाव हो।

वृक्षाणां पतये नमः। *(यजु. 16.19)*

वृक्षों का संरक्षण एवं वृक्षारोपण करने वालों को नमस्कार है।

वनानां पतये नमः। *(यजु. 16.18)*

वनों के स्वामियों को नमस्कार है।

माऽपो मौषधीर्हिं ॐ सीर्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च।

(यजु. 6.22)

इस यजुर्वेदीय मन्त्र में औषधियों को नष्ट न करने का उल्लेख है।

2.2 प्रकृति -

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

(अथर्ववेद 2.1)

प्रकृति के संरक्षण की संस्कृति सृष्टि के आरम्भ से रही है। वैदिक दृष्टि के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक ही परिवार का अंग है।

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।

सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥

(ऋग्वेद. 1.160.2)

ऋग्वेद में आकाश को पिता, धरती को माता, चन्द्रमा को भाई और अदिति को बहन का स्थान दिया है, एक तरह से हमारे पूर्वजों ने प्रकृति ही नही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मानव का अंग माना। उपनिषद् में भी अखण्ड ब्रह्माण्ड को प्रकृति के विविध अवयवों के मेल से मिलकर बना हुआ माना गया है। वैदिक धर्म का प्रारम्भिक रूप प्रकृति की पूजा थी। पृथिवी, सूर्य, वरुण, आकाश, अग्नि आदि प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को विभिन्न देवताओं के नाम से सम्बोधित कर विभिन्न ऋचाओं से वैदिक ऋषियों ने उपासना की।

सूर्य संसार की आत्मा है -

सृष्टि के आरम्भ से ही सूर्य पूजा का अत्यन्त महत्त्व रहा है। सूर्य की पूजा देवतुल्य रूप में की जाती थी, क्योंकि सूर्य प्रकाश एवं ऊर्जा प्रदान करता है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। *(यजु. संहिता 8.17)*

यजुर्वेद संहिता के इस मन्त्र में सूर्य को संसार की आत्मा (प्राण) कहा गया है।

वर्तमान समय में यह सिद्ध हो गया कि सूर्य, ऊर्जा का अन्तिम स्रोत है जो ऊर्जा प्रवाह को नियन्त्रित करता है तथा खाद्य श्रृङ्खला को ऊर्जा प्रदान करता है तथा पारिस्थितिकी तन्त्र को

नियन्त्रित करने का कार्य करता है। सौर ऊर्जा के इस महत्त्व को हमारे पूर्वजों ने अच्छी तरह से समझा और अनुभव किया था। इसलिए हर शुभ अवसर पर ऋग्वेद के गायत्री मन्त्र का जप किया जाता था।

ॐ भूर्भुवः स्वः।

तत्सवितुर्वरेण्यम्

भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

(ऋग्वेद. 3.62.10)

यह मन्त्र सूर्य की प्रसन्नता से भरा हुआ है।

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः॥

(अथर्व. 12.1.26)

जो पृथिवी शिला, भूमि, पत्थर और धूल के रूपों को धारण करती है। ऐसी पृथिवी जो हिरण्यवक्षा है। मैं उस पृथिवी को नमस्कार करता हूँ। ऐसा अथर्ववेद में वर्णन है।

आपो अस्मान्मातरः। *(यजु. 4.2)*

आप (जल) हमारी माता है। यजुर्वेद के इस मन्त्र में जल को माता के रूप में बताया गया है।

प्राचीन ग्रन्थ गुरु ग्रन्थ साहिब में भी वायु को गुरु, जल को पिता एवं पृथिवी को माता कहा गया है।

2.3 वनस्पति और जीव -

भारतीय परम्परा में वृक्षों को बहुत महत्त्व दिया गया है। वेदों में औषधियों तथा फलों के महत्त्व को बताया गया है तथा पेड़ और पौधों को चेतन प्राणी माना जाता है। अथर्ववेद में वनस्पतियों के ऐसे मन्त्रों का उल्लेख है जिनका महत्त्व चिकित्सा, आरोग्य की दृष्टि से उपयोगी है।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।

आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः॥

(अथर्व. 19.36.1)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषियों के द्वारा शतावर वनस्पति द्वारा यक्ष्मा (टी.बी.) रोग की चिकित्सा की गई है।

ओषधय ओषद् धयन्तीति वा ओषत्येना धयन्तीति वा दोषं धयन्तीति वा ।

(निरुक्त . 9.27)

औषधि शरीर में ऊर्जा उत्पन्न कर के उसे धारण करती है जो दोष, प्रदूषण आदि को दूर करती है।

ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन्। *(शत. ब्रा. 2.2.4.5)*

शतपथ ब्राह्मण में औषधियों को दोष नाशक कहा गया है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में मनुष्य और वृक्ष की समानता का विवरण दिया गया है। महाभारत के श्लोकों में वृक्षो को "संवेदनशील जीवधारी" कहा गया है तथा वृक्षों में जीवन बताया गया है इसलिए वे फलते-फूलते हैं। सर्दी-गर्मी का अनुभव करते हैं। वृक्षों को रोग भी लगते हैं और उपचार करने पर वे निरोगी हो जाते हैं।

स्पष्ट है कि भारतीय आचार्यों ने सहस्त्रों वर्ष के पूर्व ही वृक्षों के महत्त्व को समझ लिया था एवं उन्हें सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से हमारे धर्म में विभिन्न संस्कारों, रीतिरिवाजों तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ जोड़कर धार्मिक आस्था का प्रतीक बना दिया।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।

तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत॥

(अथर्व. 6.95.1)

अथर्ववेद के इस मन्त्र में पीपल वृक्ष में देवस्थान माना गया है तथा इस प्रकार पीपल वृक्ष की रक्षा की गई।

चित्र 2.1 - पीपल वृक्ष की परिक्रमा करती हुई महिलाएँ

आपने सामान्यतः देखा होगा कि प्रातः काल में महिलाएँ पीपल वृक्ष के चारों ओर परिक्रमा करती हैं। इस कृत्य मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण अन्तर्निहित है क्योंकि पीपल वृक्ष लगातार ऑक्सीजन गैस छोड़ता है जो हमारी श्वसन क्रिया के लिए आवश्यक है।

हमारे पूर्वजों को पीपल वृक्ष की महत्ता का ज्ञान पहले से ही था इसलिए पीपल वृक्ष को पूजनीय माना गया। श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने **'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्'** (गीता 10.26) कहकर अश्वत्थ की श्रेष्ठता प्रतिपादित की। इसके अतिरिक्त वट, बेल, नीम, आँवला आदि महत्त्वपूर्ण वृक्ष है जो पर्यावरण को स्वच्छ रखते हैं । 'तुलसी' भी अश्वत्थ की भाँति आराध्य है, क्योंकि तुलसी के गन्ध से सुवासित वायु दिशाओं को शुद्ध करती है तथा औषधीय रुप में भी इसका प्रयोग किया जाता है। प्राचीन धर्मग्रन्थों महाभारत, रामायण तथा कालिदास द्वारा रचित मेघदूत एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रकृति का मनोहर चित्रण किया गया है। विष्णुस्मृति में बताया है कि मनुष्य जिन वृक्षों का आरोपण करता है, वे वृक्ष अगले जन्म में उसके पुत्र रूप में उत्पन्न होते हैं। कौटिल्य के अनुसार पेड़ों या उसकी शाखाओं को काटना अपराध है और इसके लिए दण्ड भी निर्धारित थे।

2.4 नदी एवं सरोवर -

सृष्टि के आरम्भ से ही नदी, सरोवर और झरने आदि के रुप में प्रकृति प्रदत्त ये पवित्र उपहार भारतीयों की धार्मिक भावना के प्रतीक थे। महाभारत के वनपर्व में गङ्गा नदी का आराध्य के रूप में वर्णन किया गया है।

आचार्य मनु ने बताया कि तालाबों झरनों तथा कूपों का निर्माण करना चाहिए क्योंकि ये हमारे असीम वैभव और प्रसन्नता के प्रतीक है। इनके जल की प्रदूषणकारी तत्त्वों से रक्षा करनी चाहिए। शिवपुराण में जलदान को श्रेष्ठ दान माना है, क्योंकि जल से सभी जीव समुदाय तृप्त होते हैं। प्रदूषण से बचने के लिए एवं स्वस्थ जीवन प्राप्त करने के लिए ऋषियों ने पर्वतों और नदियों का सामीप्य चुना।

उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत॥

(सामवेद 1.1.2) (ऋग्वेद 8.6.28)

सामवेद के इस मन्त्र में नदियों एवं तालाबों के जल को प्रदूषित होने से रोकने के लिए दण्ड का प्रावधान भी रखा गया था।

2.5 वन्यजीव -

चित्र 2.2 - नाग-नागिन की मूर्ति वेल्लूर

जीवों पर दया और उनकी रक्षा के लिए हमने अपने प्राचीन धर्मग्रन्थों में पशु-पक्षियों को धार्मिक आस्थाओं से जोड़कर संरक्षण प्रदान किया। सिंह को दुर्गा का वाहन बनाकर उसका वध निषेध किया, उल्लू को लक्ष्मी का वाहन बनाकर तथा गज को गणेश का प्रतीक माना, मूषक को गणेश का वाहन, कुत्ते को भैरव का वाहन माना, नंदी को भगवान शंकर का वाहन माना। इस प्रकार इन्हें धार्मिक मान्यताओं से जोड़कर इनका वध निषेध किया।

सर्प को ईश्वर तुल्य माना गया एवं इसे संरक्षित किया क्योंकि यह प्रकृति का पारिस्थितिक सन्तुलन बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।

इमं मा हि ꣳ सीर्द्विपादं पशु ꣳ सहस्त्राक्षो मेधाय चीयमानः।

मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद॥

मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥

(यजुर्वेद. 13.47)

इस यजुर्वेदीय मन्त्र में पशु पर हिंसा न करने का उल्लेख हैं।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।

(अथर्व. 8.3.15)

अथर्ववेद में पशु हिंसा को दण्डनीय अपराध माना गया है।

मनुस्मृति में जीवों को नुकसान पहुँचाने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध दण्ड का प्रावधान है।

सिन्धु घाटी सभ्यता के शहरों मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के शहरों से एक सींगा, हाथी, कूबड़ वाला बैल आदि जानवरों की मोहरें प्राप्त हुई जो यह बताती है कि वहाँ के लोग पशु प्रेमी थे।

चित्र 2.3 – सरस्वती, सिन्धु घाटी सभ्यता की मोहरें

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।

वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः ॥

(महाभारत अनुशासनपर्व 69.7)

महाभारत के अनुशासन पर्व में गाय को सम्पूर्ण प्राणियों की माता के रूप में बताया गया है एवं गाय सभी प्राणियों को सु:ख प्रदान करती है ।

मौर्य साम्राज्य के शासक सम्राट अशोक ने पशुओं पर क्रूरता एवं हत्या को प्रतिबंधित किया था एवं गिरनार (गुजरात) को पशुओं के लिए संरक्षित किया था तथा पशुओं के उपचार की व्यवस्था की थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी पशुओं के लिए वन्य जीव अभयारण्य की बात कही गई है तथा वनों की सुरक्षा के लिए वनाधिकारी नियुक्त करने की बात कही गई है।

2.5 वेदों में पञ्चतत्त्वों से प्रकृति सन्तुलन -

जीवों के आसपास की समस्त जैविक एवं अजैविक परिस्थितियों के बीच पूर्ण सांमजस्य होने से प्रकृति सन्तुलन होता है । पञ्चतत्त्वों द्वारा प्रकृति सन्तुलन का वर्णन वेदों में विस्तारपूर्वक किया गया हैं। वेदों में जल, पृथिवी, वायु, अग्नि और आकाश आदि के प्रति श्रद्धा प्रकट करने पर अधिक जोर दिया है। सर्वप्रथम यहाँ जल तत्त्व का उल्लेख किया है। जल का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।

अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥

अथर्ववेद (1.4.4)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र से स्पष्ट होता है कि जल में अमृत है, जल में औषधि गुण विद्यमान रहते हैं, जो कि शक्ति, रोगनाशक एवं पुष्टिकारक आदि गुणों से युक्त जल तत्त्व हमे और हमारे अश्वों व गायों को वेग एवं बल प्रदान करे।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशम्भुवम्॥

(अथर्ववेद 1.6.2)

जल हर प्रकार के औषधीय गुणों से युक्त है। हम लोगों के लिए जल सोम रस के समान ही है। ऐसे कल्याणकारी जल में अग्नि भी विद्यमान है।

पृथिवी तत्त्व - पृथिवी को भारत में धरती माँ के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। पृथिवी अर्थात् इस धरती माँ के गुणों का वर्णन करना कदापि आसान नहीं है।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ *(अथर्ववेद 12.1.13)*

अर्थात् जिस भूमि पर वेदिकाएँ बनाकर विश्वकर्मा यज्ञ का विस्तार करते हैं। जहाँ स्वच्छ आहुतियों के पहले आधार स्थापित किए जाते हैं। जहाँ यज्ञ के जयकारे होते हैं। ऐसी वर्धमान भूमि हम सबका विकास करें। इस प्रकार पृथिवी की स्तुतियाँ वैदिक वाङ्मय में बताई गई है - **वायु तत्त्व का महत्त्व** - वायु में जीवनदायिनी शक्ति है इसलिये इसकी स्वच्छता पर्यावरण की अनुकूलता के लिये परम अपेक्षित है। वेदों में वायु की स्तुति की गई है जिससे जीवों का निरन्तर सम्यक् विकास होता रहे। **"वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः समावतु।"** वायु अन्तरिक्ष का अधिपति है और हमारी रक्षा करता है। हमारे जीवन हेतु सहायक है। **"वायुमित्राणामिषग्त्राण्याज्तु"** वायु देव हमारे शत्रु के बाणों के अग्र भाग को शक्तिहीन करे । लोकोक्ति है कि **"जब तक सांस। तब तक आस"** जब तक हमारे शरीर में वायु का गमनागमन होता रहेगा तब तक हमारा शरीर कार्य करने में सक्षम रहेगा। लेकिन जब वायु का सञ्चार होना बन्द हो जाए तब हमारी मृत्यु हो जाएगी ।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥

अग्नि तत्त्व - ऋग्वेद (1.1.1)

हे अग्निदेव आपकी प्रशंसा ऋषियों के द्वारा की गई है, जो कि आने वाले आधुनिक समय में भी ऋषितुल्य द्वारा सर्वदा पूजनीय व स्तुत्य है। आप कृपा कर इस यज्ञ में देवताओं का आवाहन करें और हमारे पुण्यफल प्राप्ति में सहायक बनें। ऋग्वेद में भी अग्नि को पिता के समान कल्याणकारी कहा गया है। अग्नि को हित करने वाली तथा शुभदायक मानी है।

अग्नि की यह स्तुति समाज में सन्तुलन और त्याग का महत्त्व प्रतिपादित करता है। त्याग से ही समाज में सन्तुलन बना रहता है। महान वेदज्ञ महर्षि व्यास ने अग्नि को पृथिवी- स्थानीय, वायु को अन्तरिक्ष स्थानीय एवं सूर्य को द्युस्थान देवता के रुप में महत्त्वपूर्ण मानकर सम्पूर्ण पर्यावरण व प्रकृति को स्वच्छ, विस्तृत तथा सन्तुलित रखने का भाव व्यक्त किया है। अन्तरिक्ष में विद्युत के रूप में और आकाश में सूर्य रूप में भी अग्नि ही है।

येन देवा अमृतमन्वविन्दन्येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन्।
येन देवाः स्वराभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥

(अथर्व. 4.23.6)

अर्थात् जिस अग्नि की सहायता से देवताओं ने अमृतत्व को प्राप्त किया, जिनकी सहायता से देवताओं ने औषधियों को मधुर रस से सम्पन्न किया जिनकी कृपा से देवत्व के अभिलाषी यजमान स्वर्ग को प्राप्त करते हैं वे अग्निदेव हमें समस्त पापकर्मों से मुक्त करें। ऐसी सुलभ प्रार्थना अग्नि से करते हैं। यदि हमारे व्यक्तिगत जीवन में अग्नि का समावेश ना हो तो इस पृथिवी के सभी प्राणी नष्ट हो जाते। शरीर को तेजयुक्त करने के लिये भी अग्नि अत्यावश्यक है।

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ।

(अथर्व. 2.17.1)

हे अग्निदेव आप के समान ही तेज हमे भी प्रदान करें हम आप को आहुति देते हैं।

परिपाणमसिः परिपाणं मे दाः स्वाहा ।

(अथर्व. 2.17.7)

हे अग्निदेव आप में प्रजा के परिपालन की शक्ति है। वैसी ही शक्ति आप हमें भी प्रदान करें, जिससे हम अपने समाज व परिवार का परिपालन सुखपूर्वक कर सकें। अतः हम आप को आहुति प्रदान करते हैं।

आकाश तत्त्व - आकाश अर्थात् द्युलोक या अन्तरिक्ष आकाश से हमें सूर्य की किरणें मिलती है, जिससे हमारा शरीर ऊर्जावान् होकर दैनिक दिनचर्या को पूर्ण रूप से सञ्चालित करने में सहायक होता है। आकाश को वेदों में पिता कहा गया है।

द्यौष्द्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने।

यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥ *(अथर्व. 2.28.4)*

अर्थात् सभी मनुष्य धरती की गोद में प्राण और अपान वायु से संरक्षित हो कर चिरकाल तक जीवित रहों। तुम्हारे पिता द्युलोक है और माता पृथिवी दोनों मिलकर तुम्हें, वृद्धावस्था के बाद ही मृत्यु प्रदान करें।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्। *(अथर्व. 1.2.1)*

अनेक प्रकार से चराचर धारक एवं पोषक पर्जन्य को हम शर (बाण) ने पिता के रुप में जानते हैं। आकाश के विभिन्न स्त्रोतों से बरसने वाले पोषक व उत्पादक स्थूल एवं सूक्ष्म प्रवाहों को पर्जन्य कहा जाता है। वर्तमान विज्ञान भी यह मानता है कि सूक्ष्म कणों के रुप में कुछ उदासीन तथा कुछ उत्पादक प्रकृति वाले कण प्रवाहित होते हैं ।

आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।

पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।

तै.उ. ब्र. वल्ली. 1 अनु.

आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से ओषधियाँ, ओषधियों से अन्न एवं अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक् आदित्यमुपजायते।

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥ *(मनुस्मृति)*

आकाश से हमे जल की प्राप्ति होती है, जल से अन्न की और अन्न से वीर्य की उत्पत्ति होती हैं। इसी कारण से प्रकृति को सदा सन्तुलित रखने के लिये इन पञ्चतत्त्वों का योगदान होना अति महत्त्वपूर्ण है। ये शरीर पञ्चतत्त्वों से ही मिलकर बना है। इनमें से शरीर या संसार में एक भी ना हो तो ये चारों भी नहीं रहते हैं प्रत्येक मनुष्य को पञ्चतत्त्व के महत्त्व को समझकर पर्यावरण के प्रति आस्थावान होना चाहिए। वेदों में और भी बहुत सारे विधान पञ्चतत्त्वों के बारे में बताये गये हैं।

अभ्यास कार्य

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) निम्न में से सिन्धु घाटी सभ्यता का नगर है –

अ) हड़प्पा ब) जयपुर

स) भोपाल द) मथुरा

(2) जलदान को श्रेष्ठ दान किस पुराण में माना गया है –

अ) शिव पुराण ब) विष्णु पुराण

स) मार्कण्डेय पुराण द) ब्रह्म पुराण

(3) निम्न में से किस जन्तु को भगवान गणेश का प्रतीक माना गया है –

अ) मूषक ब) सिंह

स) गज द) उल्लू

प्र.2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(1) ..... ग्रन्थ में जीवों को नुकसान पहुँचाने वाले व्यक्ति के विरुद्ध दण्ड का प्रावधान है।

(2) ..... को सभी वृक्षों में श्रेष्ठ माना गया है।

(3) ऊर्जा का अन्तिम स्रोत ..... है।

प्र.3 सही या गलत बताइए -

(1) नाग-नागिन मूर्तिकला चित्र वैल्लूर में स्थित है।

(2) गायत्री मन्त्र ऋग्वेद से लिया गया है।

(3) सृष्टि के आरम्भ से ही सूर्य पूजा का अत्यन्त महत्त्व रहा है ।

प्र.4 सही जोड़ी मिलान कीजिए -

(1) सिन्धु घाटी सभ्यता - पीपल वृक्ष

(2) कौटिल्य अर्थशास्त्र - पशुओं का उपचार

(3) सम्राट अशोक - वन्य जीव अभयारण्य

(4) अश्वत्थ - मोहनजोदड़ो

प्र.5 अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) किस सभ्यता की मोहरों में एक सींगा पशु का चित्र दिखाई देता है?

(2) अभिज्ञानशाकुन्तलम् ग्रन्थ के रचनाकार कौन है?

(3) निरन्तर ऑक्सीजन छोड़ने वाले वृक्ष का क्या नाम है?

प्र.6 लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) प्रकृति के प्रति भारतीय धार्मिक ग्रन्थों का क्या दृष्टिकोण है?

(2) पेड़ों की पूजा में सांस्कृतिक और साथ ही व्यावहारिक प्रेरणाएँ क्या है?

(3) गाय की तुलना पृथिवी से किस प्रकार की हैं?

प्र.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) वृक्षों और पशुओं को देवताओं के समान क्यों माना जाना चाहिए?

(2) नदी और तालाबों को हम प्रदूषित होने से किस प्रकार बचा सकते हैं?

परियोजना कार्य

अपनी पाठशाला में विभिन्न प्रकार के वृक्षों का रोपण कीजिए।

अध्याय - 3

प्राचीन भारतीय कृषि प्रणाली

अध्ययन बिन्दु

3.1 प्रस्तावना

3.2 कृषि विज्ञान का स्वरूप एवं विकास

3.3 कृषि सम्बन्धित प्रमुख ग्रन्थ

3.4 प्रागेतिहासिक काल में कृषि

3.5 भूमि के प्रकार

3.6 वर्षा से सिंचित और जल स्त्रोतों से सिंचित फसलें

3.7 कृषि में प्रयुक्त उपकरण

3.8 बीज और बुआई

3.9 खाद

3.10 पौधों की सुरक्षा

3.11 उद्यानिकी

3.1 प्रस्तावना -

भारत में चट्टानी मिट्टी से लेकर जलोढ मिट्टी एवं विविध प्रकार की जलवायु स्थित है, जो कि विश्व की सर्वोत्तम भूमियों में से एक है। भारत में प्रकृति प्रदत सिंचाई प्रणाली और सतत् बहने वाली नदियों ने उत्पादक क्षेत्रों का विस्तार किया है।

3.2 कृषि विज्ञान का स्वरूप एवं विकास -

ऋग्वेद में प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उस समय तक कृषि का पर्याप्त विकास हो चुका था। कृषि मनुष्य के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन था। कौटिल्य अर्थशास्त्र की व्यवस्था के

अनुसार जल, भूमि, बीज परिकर्म, व्याधि-चिकित्सा, पुष्प, रस, फल, गन्ध आदि कृषि कर्म के अन्तर्गत आते हैं।

कृषि कार्य की सुगमता के कारण ही मनुष्य ने नदियों के किनारे प्रमुखता से अपना स्थान बनाया। वेदों में कृषि का उन्नत स्वरुप मिलता है। अन्न को प्राण माना गया है।

अन्नं वै प्राणाः, अन्नं ब्रह्म विजानीयात्।

(ऐतरेय ब्रा. 1.17.5)

ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि अन्न ही प्राण है, अन्न ही ब्रह्म है।

अन्न एवं कृषि में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हैं।

अथैनं विकृषति, अन्नं वै कृषिः।

(श.प.ब्रा. 7/2/2/6)

शतपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि कृषि ही मनुष्य को धन, धान्य से पूर्ण करती है।

ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति

कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ।

(अथर्व. 8.10 (4) 12)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र से स्पष्ट होता है कि कृषि और अन्न पर सभी मनुष्यों का जीवन निर्भर है। इसलिए कृषि विशेषज्ञ की शरण में सभी लोग जाते हैं।

ऋग्वेद में हल - बैल के प्रयोग, सिंचाई के साधनों का उल्लेख है।

पुरातन समय में धान, गेहूँ एवं जौ मुख्य फसलें थी।

तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च।

(महाभारत शान्तिपर्व. 59.126)

17 प्रकार के अन्नों का वर्णन हैं।

अन्न के भण्डारण एवं कटाई का भी निर्देश है। (कौषीतकिब्राह्मण 21/3) कृषिधन, कीट, उपक्वस, जभ्य, पतंगा आदि कीटो का वर्णन हैं। कुरु देश में टिड्डी के आक्रमण को बताया है **(मटची हतेषु कुरुषु)** (छा.उ. 1/10/1)

सुसस्याः कृषीस्कृधि। *(यजु. 4.10)*

यजुर्वेद के इस मन्त्र में उत्तम अन्नों की कृषि करने का उल्लेख है।

सम्मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सम्मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः।

सोहं वाजꣳ सनेयमग्ने। *(यजु. 18.35)*

यजुर्वेद के इस मन्त्र में कृषि कार्य के लिए जल की आवश्यकता का उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है कि पुरातन समय से हमें फसलों की सिंचाई का ज्ञान था।

कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः ।

(कृषि पाराशर श्लोक 8)

कृषि धन (सम्पत्ति) एवं बुद्धि (मेधा) प्रदान करती है कृषि ही सभी जीव-जन्तुओं के जीवन का आधार है ।

3.3 कृषि सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थ -

वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वराहमिहिराचार्य की बृहत्संहिता एवं चरक संहिता कृषि सम्बन्धी ग्रन्थ है। सबसे प्रमुख कृषि सम्बन्धी ग्रन्थ कृषि पराशर है जो कृषि शास्त्र का विश्वकोष हैं।

3.4 प्रागैतिहासिक काल में कृषि -

पुरातात्विक विभाग के अन्वेषणों से पता चला है कि गङ्गा नदी के कुछ समतल भागों में चावल उगाया जाता था तथा जौ और बाजरा की खेती 7वीं सदी में हुई थी।

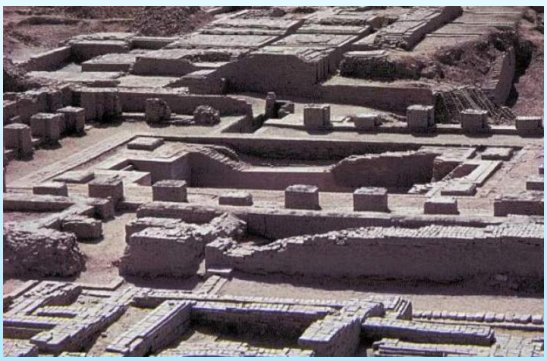

चित्र 3.1 – जौ के बॉक्सनुमा खेत

मेहरगढ (बलुचिस्तान) में प्राप्त हुए बॉक्सनुमा जौ की खेती के लिए क्षेत्र अगली शताब्दी में अन्य फसलों की पैदावार प्रारम्भ हुई।

- अन्य अनाज जैसे – गेहूँ, तिल, सूरजमुखी, अलसी, सरसों, अरण्डी, हरे चने, काले चने आदि प्राप्त हुए ।

- रेशेदार फसलें - कपास, ककड़ी, बैंगन की सब्जियाँ आदि प्राप्त हुई ।
- फल - अँगूर, खजूर, बेर, कटहल, आम, शहतूत, काला बैर आदि प्राप्त हुई ।

घरेलू पशुओं बकरी, कुत्ते, सूअर को पाला जाता था। उस समय मिश्रित कृषि (एक ही समय दो अलग-अलग फसलें उगाने) की प्रणाली का भी ज्ञान था।

3.5 भूमि के प्रकार -

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः।

आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ॥

अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम्॥

(ऋग्वेद 1/127/6)

ऋग्वेद में (अप्नस्वती) उर्वरा भूमि तथा (आर्तना) बिना जुती हुई भूमि का उल्लेख है। अमरकोश में 12 प्रकार की भूमि का वर्णन है।

उर्वरा सर्वसस्याढ्या स्यादूषः क्षारमृत्तिका ।

(अमरकोश 2.4)

ऊषवानूषरो द्वावप्यन्यलिंगौ स्थलं स्थली ।

(अमरकोश 2.5)

उर्वरा (उपजाऊँ), उसरा (बंजर), मरू (रेगिस्तान), अप्रहत (परती), शाड्वल (घास युक्त), पंकीकला (दलदल), जलप्रिया (जलयुक्त), कच्छ (पानी के समीप की भूमि), शार्करा (कंकड़ से भरे और चूने पत्थर टुकड़े युक्त), शकरवती (रेतीले), नदीमातृका (नदी द्वारा बाहा कर लायी गयी मिट्टी), देवमात्टिका (वर्षा जल युक्त)

3.6 वर्षा से सिंचित और जल स्त्रोतों से सिंचित फसलें -

ऋग्वेद में जल के दो प्रकार बताए गए है - खनित्रिमा एवं स्वयंजा –

या आपो दिव्या उत वा स्त्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।

(ऋग्वेद 7/49/2)

नदी के जल को **'स्वयंजा'** एवं कूपादि के जल को **'खनित्रिमा'** कहते हैं। कूप से जल निकालने की प्रक्रिया ऋग्वेद में बताई गई हैं। नाली बनाकर जल खेत में पहुँचाया जाता था। कृषि पाराशर में नलारोपण के बारे मे बताया गया है। इसके द्वारा जल के अभाव में सिंचाई का कार्य किया जाता था।

अथ कार्तिक सङ्क्रान्त्यां क्षेत्रे च रोपयेन्नलम् ।

केदारेशानकोणे च सपत्नं कृषकः शुचिः ॥

(कृ.प. 198)

भारत में फसल उत्पादन, मौसमी मानसून पर निर्भर करता था।

कृषि पाराशर में वर्षा सम्बन्धी भविष्यवाणी की मुख्य तकनीक आकाश में सूर्य तथा चन्द्रमा की स्थिति पर निर्भर थी। बृहत्संहिता में मौसमी वर्षा की भविष्यवाणी नक्षत्रों पर आधारित थी।

वर्तमान समय में भी कई किसान इन पद्धतियों पर आधारित मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी के आधार पर कृषि कार्य करते हैं।

सिंचित फसलों को जलाशयों, नहरों के द्वारा सिंचित किया जाता था।

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः।

(अथर्व. 1.4.3)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में नदियों एवं जलाशयों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि जलाशयों का निर्माण जानते थे।

फसलों की सिंचाई के लिए एक जोड़ी बैल की सहायता से चमड़े के पात्र के द्वारा कुएँ से पानी निकालकर छोटी नहरों द्वारा खेतों में पहुँचाया जाता था।

सिन्धु घाटी सभ्यता के धोलावीरा में विशाल जलाशय का निर्माण किया गया जिससे सिंचाई कार्य हो सके।

चित्र 3.2 - कावेरी नदी पर निर्मित 329 मी. लम्बा बाँध।
इसका निर्माण 1800 वर्ष पहले चोल राजा कारिकाला ने करवाया था।

3.7 कृषि में प्रयुक्त उपकरण -

शुन ꣳसु फाला वि कृषन्तु भूमि ꣳशुनं कीनाशा ऽअभि यन्तु वाहैः।

(यजुर्वेद. 12.69)

इस यजुर्वेदीय मन्त्र में भूमि की जुताई अच्छे हल द्वारा करने का वर्णन है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि कृषि करने की विधि से परिचित थे । फसल बुआई के पूर्व भूमि को हल द्वारा जोतना (उलट-पुलट करना) जानते थे।

ऋग्वेद मे हल की प्रशंसा की गई है, क्योंकि हल ही अन्नोत्पादन का प्रमुख साधन है।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥

(अथर्व. 3.17.6, ऋग्वेद. 4.57.4)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में बीज बुआई से पहले खेत ठीक ढंग से तैयार करने का उल्लेख है।

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन्॥

(अथर्व. 3.17.1,2, ऋग्वेद. 10.101.3, यजुर्वेद.12.68)

ऋग्वेद के इस मन्त्र में बैलों के कन्धों पर हल स्थापित करने का उल्लेख किया गया है एवं बीज बुआई का उल्लेख है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्वज कृषि उपकरणों का प्रयोग करना जाते थे ।

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।

उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम्॥

(अथर्व. 3.17.3)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में लोहे के फाल वाले हल का वर्णन किया गया है।

रेतः सिचदेवं तद्धदकृष्ठे वर्पात।

(शतपथ ब्रा. 7/2/2/5)

अथर्ववेद में हल का वर्णन मिलता है।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ।

(अथर्व 3.17.1)

चित्र 3.3 – लकड़ी का हल

कृषि पाराशर में हल के विविध भागों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। हल के 10 भागों के नाम बताए गए है -

1. ईषा - जिस दण्ड से हल बाँधा जाता था, जिसमें बैल जोते जाते हैं।
2. युग - जिसमें बैल जोते जाते हैं।
3. स्थाणु - लकड़ी जो लोहे के फाल के साथ जोड़ी जाती है।

4. निर्योल - वह दण्ड जो मुख्य दण्ड से जुड़ा होता था।
5. निर्योल पाशिका - वह मुठिया जिसे पकड़कर हल जोता जाता है।
6. अङ्कचल्ल - लकड़ी की खूँटी।
7. शौल - लोहे का फाल जो मिट्टी खोदता हैं।
8. पञ्चानिका - बैलों को हॉकने का दण्ड।
9. योक्त्र - बैलों को जोतने के लिए गले में बाँधी जाने वाली रस्सी।
10. रज्जु - हल के पूर्व भाग को पृष्ठ भाग से जोड़ने वाली रस्सी।

3.8 बीज और बुआई -

फसल की उत्पादन क्षमता बीज की गुणवत्ता पर निर्भर होती है । सबसे पहले बीज की सफाई करना चाहिए। उसमें घुन, कीड़ें न लगे हो तथा घृत, मक्खन, तेल न लगा हो। उसे धूप में सूखाकर रखना चाहिए। जमीन पर नहीं फैलाना चाहिए ऐसा करने पर बीजो में नमी आ सकती है। बीजों में एकरूपता होनी चाहिए। माघ एवं फाल्गुन के महीने मे ही बीज इकट्ठे कर लेना चाहिए।

माघे वा फाल्गुने मासि सर्वबीजानि संहरेत्।
शोषयेदातपे सम्यक् नैवाधो विनिधापयेत् ॥
बीजस्य पुटिकां कृत्वा विधान्यं तत्रा शोधयेत्।
बीजं विधान्यसंमिश्रं फलहानिकर परम् ॥
एकरूपं तं यद् बीजं फलं फलति निर्भरम्।
एकरूपं प्रयत्नेन तस्मात् बीजं समाचरेत्।
सुदृढं पुटकं कृत्वा तृणं छिन्द्यात् विनिर्गतम्।
आच्छिन्नतृणके ह्यस्मिन् कृषिः स्यात् तृणपूरिता ॥

(कृ.पृ.157.160)

बीज दीमक वाले स्थान पर, पशु रहने वाले स्थान में नहीं रखना चाहिए। दीप, अग्नि, धूम (धुआँ), वर्षा से सम्पृष्ट बीज फलदायी नहीं होता है।

दीपाग्निधूमसंपृष्टं वृष्ट्या चोपहतं च यत् र्जनीयं सदा बीजं यत् गर्तेषु पिधापितम्।

(कृ.प.164.168)

कृषि पाराशर में बताया गया है कि समय बीत जाने पर बीज बुआई से लाभ नहीं होगा। बीज बुआई के बाद उन पर हल्की मिट्टी चढा देनी चाहिए।

बीजस्य वपनं कृत्वा मयिकां तत्र दापयेत्।

तदभावेन बीजानां समजन्म न जायते ॥

(कृ.प.182)

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति।

एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु॥

(अथर्व. 10.6.33)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में भूमि में उत्तम बीज बुआई का उल्लेख किया गया है।

कृते यौनौ वपतेह बीजम्।

(यजुर्वेद. 12.68)

यजुर्वेद में भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोये जाने का उल्लेख किया गया हैं। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में उत्तम बीजों के चयन करने के उपरान्त ही बीजारोपण करने का उल्लेख है।

प्रत्यारोपण -

बीज के दो प्रकार है। प्रथम बुआई करने वाले तथा दूसरे जिनका प्रत्यारोपण किया जाता है। प्रत्यारोपण किये जाने वाले पौधों में रोग का भय रहता है।

वपनं रोपणं चैव बीजं स्यादुभयात्मकम्, वपनं रोगनिर्मुक्तं रोपणं सगदं सदा।

(कृ.प.183)

3.9 खाद -

पौधों की बीमारियों से लड़ने की क्षमता को बढाने तथा फसलों की उत्पादक क्षमता बढाने के लिए गोबर की खाद का प्रयोग किया जाता था।

धूप में गोबर सुखाकर, महीन कूटकर खेतों के गड्ढे में फाल्गुन मास में रखना चाहिए।

रोद्रे संशोठय तत्सर्वं कृत्वा गुण्डकरूपिणम्,

फाल्गुने प्रतिकेदारे सारं गर्ते निधापयेत् ॥

(कृ.प.110)

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।

बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन॥

(अथर्व. 3.14.3)

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥

(ऋग्वेद 1.164.43)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र में कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद के उपयोग करने का उल्लेख है। खाद के लिए करीष, शकन् और शकृत् (गोबर) शब्दो का प्रयोग किया गया है।

3.10 पौधों की सुरक्षा -

पौधों की कीटों से सुरक्षा के लिए जैव रसायन का प्रयोग करते थे। यजुर्वेद के इस मन्त्र में इसका वर्णन हैं।

सं व्वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन।

स ६ रेवतीर्जगतीभिः पृचन्ता ँ सम्मधुमतीर्म्मधुमतीभिः पृञ्चन्ताम्॥

(यजुर्वेद. 1.21)

कृषकों को पौधों की सुरक्षा के उपाय करने का उल्लेख दिया गया हैं एवं पौधों में कीटों के द्वारा रोग की संभावना के बारे में उल्लेख हैं।

3.11 पशुपालन -

पशुपालन को संपन्नता का प्रतीक माना जाता था। ऋग्वेद में पशुओं के रहने के स्थान, घास खाने के स्थान व जल पीने के लिए स्वच्छ तालाब के बारे मे बताया गया है।

कन्नड़ ग्रन्थ लोकोपकार में पशुओं के उपचार के बारे में बताया गया हैं। सींग, दांत, माँसपेशियों के उपचार की विधि बताई गई है तथा टूटी हुई हड्डियों के उपचार के लिए औषधियों का उपयोग किया गया था।

पशुओं की देखरेख, पशुधन की जनगणना, बैल को प्रशिक्षित करने के लिए एक पशुधन अधीक्षक की नियुक्ति का वर्णन अर्थशास्त्र में दिया गया है।

3.12 उद्यानिकी -

हड़प्पा के लोग खजूर, अनार, नींबू और तरबूज जैसे फलों की खेती करते थे। बृहत्संहिता में ग्रांफ्टिंग विधि (कलम तैयार करने) का उल्लेख किया गया है।

3.13 उत्सव -

धान की कटाई के बाद पौष अर्थात् जनवरी में उत्सव आयोजित करने की परम्परा रही है। यह परम्परा आज भी मकर संक्रांति के अवसर पर मनाई जाती है। दक्षिण भारत (तमिलनाडु) में 'पोंगल' के रूप में त्यौहार मनाया जाता है तथा पंजाब में बैसाखी एवं असम में बिहु के रूप में धान उत्सव मनाया जाता है।

चित्र 3.4 - धान उत्सव

अभ्यास

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) बिहु पर्व किस राज्य में मनाया जाता है –

अ) मध्यप्रदेश ब) राजस्थान

स) असम द) उत्तरप्रदेश

(2) लोकोपकार मूल ग्रंथ किस भाषा में है –

अ) हिन्दी ब) संस्कृत

स) कन्नड़ द) अंग्रेजी

(3) बैसाखी पर्व किस राज्य में मनाया जाता है –

अ) असम ब) बिहार

स) पंजाब द) तमिलनाडु

प्र.2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(1) चोल राजा कारिकाला ने ..... नदी पर बाँध का निर्माण करवाया था।

(2) बृहत्संहिता में मौंसमी वर्षा की भविष्यवाणी ..... पर आधारित थी।

(3) अमरकोश में ..... प्रकार की भूमियों का वर्णन हैं।

प्र.3 सही या गलत बताइए -

(1) पौधों की कीटों से बचाने के लिए जैव रसायन का प्रयोग करते हैं।

(2) यजुर्वेद में हल का वर्णन मिलता है।

(3) हड़प्पा के लोग बागवानी से अपरिचित थे।

प्र.4 सही जोड़ी मिलाइएँ -

(1) मकर संक्रांति - तमिलनाडु

(2) पोंगल - उत्तर भारत

(3) बृहत्संहिता - कौटिल्य

(4) अर्थशास्त्र - वराहमिहिराचार्य

प्र.5 अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) पुरातन समय में मनुष्य की जीविकोपार्जन का मुख्य साधन क्या था?

(2) खाद किन पदार्थों से बनाया जाता है?

(3) हल के विविध भागों का वर्णन किस ग्रन्थ में है?

प्र.6 लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) ग्राफ्टिंग से आप क्या समझते हैं?

(2) कृषि सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थों के नाम बताइए।

(3) प्रागैतिहासिक काल में कृषि के बारे में बताइए।

प्र.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) हल के विभिन्न भागों के नाम लिखिए।

(2) प्रत्यारोपण से क्या अभिप्राय है?

(3) कृषि कार्य के लिए उपयुक्त बीज की तीन विशेषताएँ लिखिए।

अध्याय - 4

भारतीय वास्तुशास्त्र कला एवं चित्रसूत्र

अध्ययन बिन्दु

4.1 प्रस्तावना

4.2 मन्दिर की वास्तुकला

4.3 चट्टानों से निर्मित गुफाएँ

4.4 सिन्धु घाटी सभ्यता कालीन वास्तुकला

4.1 प्रस्तावना -

वास्तुविद्या या शिल्पशास्त्र प्राचीन भारत में अध्ययन किए गए तकनीकी विषयों में से एक है। वास्तुशास्त्र भवन, मन्दिर निर्माण तथा नगर नियोजन, किलों के निर्माण करने का प्राचीन विज्ञान है।

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले।

(अथर्व. 9.3.7)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में शाला (भवन) में हवा युक्त हवन कुण्ड, बैठने हेतु स्थानों का उल्लेख है।

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति।

अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि॥

(अथर्व. 9.3.8)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में भवन के शयन कक्ष में विस्तृत झरोखे का उल्लेख है।

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट् पक्षा या निमीयते।

अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये॥

(अथर्व. 9.3.21)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में भवन (शाला) को विभिन्न आकारों वाली बताया गया है जैसे - दो कक्षों वाला भवन, चार कक्षों वाला भवन आदि का उल्लेख है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि भवन निर्माण की कला को जानते थे।

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते।

विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि॥

(अथर्व. 9.3.13)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में भवन (शाला) में गाय एवं अश्व के जन्म स्थान (पशुओं) के कक्ष का उल्लेख है।

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत।

शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि॥

(अथर्व. 9.3.1)

अथर्ववेद के इस मन्त्र में गृह निर्माण का उल्लेख है, घर में एक द्वार के सामने दूसरा द्वार, एक कमरे के सम्मुख दूसरा कमरा एक कोण के सम्मुख दूसरा कोण इस प्रकार साम्यता लिए हो। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि गणितीय मान के आधार पर भवन का प्रारूप (डिजाइन) बनाना जानते थे।

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम्।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः।

तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥

(अथर्व. 9.3.15)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में बताया गया है कि शाला में चारों ओर से खुला स्थान हो जिसमें सूर्य एवं चन्द्र का प्रतिभास अच्छी प्रकार से आएँ। ऐसी प्रकाशमय भूमियुक्त शाला निर्माण का उल्लेख है।

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता।

विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ *(अथर्व. 9.3.16)*

शाला ऊर्जा प्रदान करने वाली हो, शाला में जलादि की व्यवस्था हो, शाला शोभामान हो आदि का उल्लेख है।

अथर्ववेद के शाला सूक्त में भवन के विभिन्न भागों का वर्णन किया गया है। जैसे - बैठक कक्ष, भीतरी कक्ष, भोजन कक्ष, मवेशियों के लिए पशुशाला तथा स्वागत कक्ष आदि। अर्थशास्त्र में शहर योजना, किलेबन्दी आदि का उल्लेख दिया गया है।

श्रीमद्भागवत में भी वस्तुकला के विषय में बताया गया है ।

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिलपनैपुणम् ।

रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥

(श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पंचाशत्तमोऽध्यायः 50)

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में नगर निर्माण के विषय में उल्लेख किया है । इस श्लोक में नगर में स्थित बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियों का उल्लेख मिलता है ।

4.2 मन्दिर की वास्तुकला -

भारतीय मन्दिर वास्तुकला की उत्पत्ति वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय से हुई है। वेदि (वैदिक यज्ञ वेदि) के चौकोर आकार ने मन्दिरों के मूल प्रारुप बनाने के लिए वास्तुकारों को प्रेरित किया।

मन्दिर का मूल स्वरुप -

हिन्दू मन्दिर निम्न भागों से निर्मित होता है।

1. **गर्भगृह** – गर्भगृह जहाँ मुख्य अधिष्ठाता देवता की मूर्ति को स्थापित किया जाता है।
2. **शिखर** – गर्भगृह के ऊपर बना सबसे ऊँचा स्थान इसे उत्तर भारत में शिखर कहा जाता है।
3. **मण्डप** – सार्वजनिक कार्यक्रमों के लिए एक सभामण्डप, जिसमें अनुष्ठान, प्रवचन आदि कार्य किए जाते हैं।
4. **वाहन** – वाहन अर्थात् मन्दिर के अधिष्ठाता देवता की सवारी, वाहन को एक स्तम्भ या ध्वज के साथ गर्भगृह में कुछ दूरी पर रखा जाता है।
5. **अन्तराल** – गर्भगृह और मण्डप के बीच का स्थान।

चित्र 4.1 - नागर शैली का मन्दिर

भारत में मन्दिरों को 2 श्रेणियों में बाँटा गया है -

1) उत्तर भारत की 'नागर' शैली

2) दक्षिण भारत की 'द्रविड' शैली

'वेसर' शैली में दोनों शैलियों की सम्मिलित विशेषताओं का मिश्रण पाया जाता है।

1) **नागर या उत्तर भारतीय मन्दिर शैली** – इस शैली में सम्पूर्ण मन्दिर एक विशाल चबूतरे (वेदि) पर बनाया जाता है, उस तक पहुँचने के लिए सीढियाँ होती है। मन्दिर में एक घुमावदार गुम्बद होता है, जिसे शिखर कहा जाता हैं। मन्दिर का गर्भगृह हमेशा शिखर के ठीक नीचे बनाया जाता है। नागर शैली के प्रमुख मन्दिर निम्नलिखित है -

(क) सूर्य मन्दिर (कोणार्क) - बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित कोणार्क में भव्य सूर्य मन्दिर के अब भग्नावशेष ही देखने को मिलते हैं। यह मन्दिर 1240 ई. के आस-पास बनाया गया था। 19वीं शताब्दी में इसका 70 मी. ऊँचा शिखर धराशायी हो गया। अब जगमोहन अर्थात् नृत्य मण्डप ही बचा है। सूर्य मन्दिर एक

चित्र 4.2 – कोणार्क मन्दिर

ऊँचे आधार (वेदि) पर स्थित है। इसकी दीवारें व्यापक रूप से आलंकारिक उत्कीर्णन से ढकी हुई है। इसमें बड़े-बड़े पहियों के 12 जोड़े हैं, पहियों में नाभिकेन्द्र और आरे हैं, जो सूर्यदेव की पौराणिक कथा का स्मरण कराते हैं, जिसके अनुसार सूर्य सात घोड़ों द्वारा खींचे जा रहे रथ पर सवार होते हैं।

(ख) दशावतार विष्णु मन्दिर – यह देवगढ (ललितपुर) उत्तरप्रदेश का मन्दिर छठी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में बनाया गया था। इसे गुप्तकालीन मन्दिर स्थापत्य का श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है। यह मन्दिर वास्तुकला की पंचायतन शैली में निर्मित है, जिसके अनुसार मुख्य देवालय को एक वर्गाकार वेदी पर बनाया जाता है। चार कोनों में चार सहायक छोटे देवालय बनाए जाते हैं। इस प्रकार कुल 5 देवालय बनाए जाते हैं, इसलिए इस शैली को पंचायतन शैली कहते हैं। शिखर रेखा-प्रसाद शैली पर बना है। मन्दिर का प्रवेश द्वारा पश्चिम दिशा में है। इसके बाएँ कोने पर गङ्गा और दाएँ कोने पर यमुना है। इसमें भगवान विष्णु के अनेक रूप प्रस्तुत किए गए है।

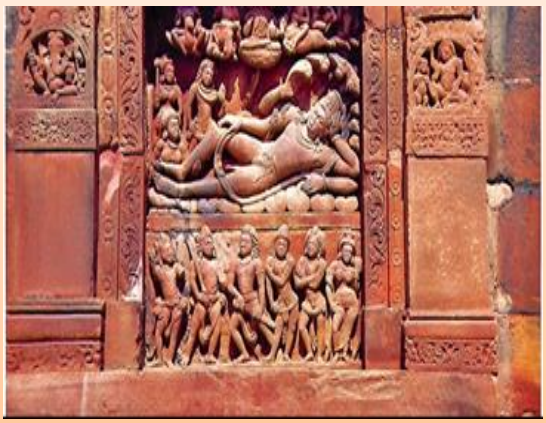

चित्र 4.3 - दशावतार विष्णु मन्दिर, शेषशायी विष्णु, दशावतार मन्दिर, देवगढ

(ग) कन्दरिया महादेव मन्दिर - खजुराहो स्थित कन्दरिया महादेव मन्दिर का निर्माण भारतीय मन्दिर स्थापत्य की शैली की पराकाष्ठा है। इस विशाल मन्दिर के स्थापत्य एवं मूर्तिकला में मध्यकालीन भारतीय मन्दिर निर्माण के वे सभी लक्षण विद्यमान है, जिनके लिए मध्य भारत की स्थापत्यकला की श्रेष्ठता जानी जाती है।

चित्र 4.4 - कन्दरिया महादेव मन्दिर

खजुराहो के मन्दिर अपनी श्रृङ्गार प्रधान प्रतिमाओं के लिए प्रसिद्ध है। प्रतिमाओं को पत्थरों से काटकर मन्दिर की दीवारों पर उभारा गया है।

(घ) चौसठ यौगिनी मन्दिर - यह मन्दिर मध्यप्रदेश के मुरैना जिले में मितावली नामक स्थान पर स्थित है। इस मन्दिर क निर्माण 1323 ईस्वी पूर्व कच्छप राजा देवपाल द्वारा किया गया था। यह मन्दिर वृत्तीय आधार पर निर्मित है, इसके आन्तरिक भाग में 64 छोटे कक्ष हैं। मन्दिर के मध्य में एक खुला मण्डप है। वर्षा के जल को संचित करने के लिए छत से पाइप लाइन को भूमिगत टैंक से जोडा गया है इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन मन्दिरों में वर्षा जल संग्रहण की व्यवस्था की जाती थी। 1920 ई. में भारतीय संसद भवन का निर्माण इसी मन्दिर की शैली पर किया गया है।

चित्र 4.5 - चौसठ यौगिनी मन्दिर

2) **द्रविड़ या दक्षिण भारतीय मन्दिर शैली** – दक्षिण भारतीय शैली के मन्दिर चारों ओर एक चारदीवारी से घीरे होते हैं। इस चारदीवारी के बीच में प्रवेश द्वार होते हैं जिन्हें गोपुरम् कहते हैं। मन्दिर के गुम्बद का रूप जिसे तमिलनाडु में विमान कहा जाता है। मुख्यतः एक सीढीदार पिरामिड़ की तरह होता है जो ऊपर की ओर ज्यामितीय रूप से उठा होता है। दक्षिण भारतीय मन्दिरों मे उग्ररुप में द्वारपालों की प्रतिमाएँ खड़ी की जाती हैं जो प्रतीक रूप से मन्दिर की रक्षा

चित्र 4.6 - द्रविड़ मन्दिर (डिजाइन)

कर रहे हैं। मन्दिर के परिसर में कोई बड़ा जलाशय या तालाब होता है। द्रविड शैली के प्रमुख मन्दिर निम्नलिखित हैं -

(क) मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर – यह तमिलनाडु राज्य के मदुरई नगर में स्थित है। इसका निर्माण पाण्डया राजाओं ने 13 वीं शताब्दी में करवाया। इस मन्दिर का स्थापत्य एवं वास्तु आश्चर्यचकित करने वाला है। इसी कारण यह आधुनिक विश्व के 7 आश्चर्यों में प्रथम स्थान पर है। इस इमारत समूह में 12 भव्य गोपुरम् है, जो अतीव विस्तृत रुप से शिल्पित है। इन पर बड़ी कुशलतापूर्वक चित्रकारी की गई है।

चित्र 4.7 – मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर (मदुरई)

(ख) चेन्नाकेशव मन्दिर – यह प्रसिद्ध मन्दिर कर्नाटक राज्य के वेल्लूर में स्थित हैं। इसका निर्माण होयसल वंशीय राजा नरेश विष्णुवर्धन ने 1117 ई. में किया था। स्थापत्यकला एवं मूर्तिकला के कारण यह भारत का सर्वोत्कृष्ट मन्दिर है। मन्दिर के प्रवेश द्वारों पर रामायण, महाभारत के दृश्य अंकित है।

चित्र 4.8 – चेन्नाकेशव मन्दिर

(ग) विरूपाक्ष मन्दिर - यह कर्नाटक राज्य के हम्पी में स्थित हैं। इसका निर्माण विक्रमादित्य द्वितीय की रानी लोकम द्वारा किया गया था। यह मन्दिर ईट तथा चूने से बना हुआ है । युनेस्को के घोषित धरोहरों में सम्मिलित है। यह मन्दिर द्रविड़ परम्परा का सर्वोत्तम उदाहरण है।

चित्र 4.9 – विरूपाक्ष मन्दिर (कर्नाटक)

4.3 चट्टानों से निर्मित गुफाएँ -

1) **लोमा ऋषि गुफा** - यह बरबाड़ पहाड़ियों (बिहार) में स्थित है। मौर्य सम्राट अशोक के शासनकाल के दौरान तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व गुफा की खुदाई हुई और इसे आजीविका हेतु भिक्षुओं को दिया गया। गुफा का प्रवेश द्वारा झोपड़ी के आकार का है। सुरंग के अंदर दो कमरे स्थित हैं। एक बड़ा आयताकार रहने वाला कमरा जो सभागृह (असेंबली हॉल) के रूप में कार्य करता है। एक दूसरा कमरा छोटा है जिसमें गुम्बद के आकार की छत है।

चित्र 4.10 – लोमा ऋषि गुफा

2) **अजंता की गुफाएँ** – यह महाराष्ट्र में स्थित है। 29 चट्टानों को काटकर बनायी गई ये गुफाएँ द्वितीय शताब्दी ई.पू. की हैं। यहाँ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्रण एवं शिल्पकारी के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं।

3) **एलोरा गुफाएँ** – यह संभाजीनगर (महाराष्ट्र) से 30 किमी की दूरी पर स्थित है। इसका निर्माण राष्ट्रकूट वंश के शासकों द्वारा किया गया। यहाँ 34 गुफाएँ है, जो एक ऊर्ध्वाधर खड़ी चरणाद्रि पर्वत का एक फलक है। इन्हें बेसाल्ट की खड़ी चट्टानों की दीवारों से काट कर बनाया गया है।

चित्र 4.12 – एलोरा गुफाएँ

4.4 सिन्धु घाटी की सभ्यता कालीन वास्तुकला -

भारतीय वास्तुकला के प्राचीनतम उदाहरण हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगा, लोथल और रंगपुर से प्राप्त हुए हैं। यह स्थान आभूषण निर्माण कार्य के केन्द्र थे। नगर योजना उत्कृष्ट थी। जली हुई ईटों का निर्माण कार्य में अधिक प्रयोग होता था, सड़के चौड़ी और एक दूसरे के समकोण पर होती थी, शहर में जल की निकासी के लिए नालियों को अत्यन्त कुशलतापूर्वक बनाया गया था। घरों में स्नानघर का निर्माण किया गया था। इस काल में मिट्टी, कच्ची ईंट, बांस, इमारती लकड़ी, पत्तों, घास फूस और छप्पर जैसी जैविक वस्तुओं का प्रयोग हुआ था।

चित्र 4.13 – मोहनजोदड़ो नगर

अभ्यास कार्य

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) एलोरा की गुफाएँ कहाँ स्थित है –

अ) मैसूर ब) संभाजीनगर

स) खजुराहो द) धार

(2) मन्दिर का वह भाग जहाँ मुख्य अधिष्ठाता देवता की मूर्ति को स्थापित किया जाता है –

अ) मण्डप ब) शिखर

स) गर्भगृह द) इनमें से कोई नहीं

(3) निम्न में से कौन-सा नागर शैली का मन्दिर है –

अ) कंदरिया महादेव मन्दिर ब) मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर

स) चेन्नाकेशव मन्दिर द) विरूपाक्ष मन्दिर

प्र.2 रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए -

(1) दक्षिण भारतीय शैली के मन्दिरो के प्रवेश द्वार को.....कहा जाता है।

(2) .....के चौकोर आकार ने मन्दिरों की मूल आकृतियों को बनाने के लिए प्रेरित किया।

(3) चेन्नाकेशव मन्दिर .....में स्थित है।

प्र.3 सही या गलत बताइए -

(1) कालीबंगा, सिन्धु घाटी सभ्यता का नगर है।

(2) विरूपाक्ष मन्दिर का निर्माण विक्रमादित्य द्वितीय के शासनकाल में हुआ।

(3) एलोरा में 34 गुफाएँ स्थित है।

प्र.4 सही जोड़ी मिलान कीजिए -

(1) शिखर - द्रविड़ शैली

(2) विमान - नागर शैली

(3) दशावतार विष्णु मन्दिर - खजुराहो

(4) कन्दरिया महादेव मन्दिर - देवगढ

प्र.5. अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) अजंता गुफाएँ कहाँ स्थित है ?

(2) सिन्धु घाटी सभ्यता के नगरों के नाम लिखिए।

(3) कोणार्क के सूर्य मन्दिर का निर्माण कब हुआ ?

प्र.6. लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) वास्तु से आप क्या समझते हैं ? भारत में वास्तु परम्परा कितनी पुरानी है।

(2) सिन्धु सभ्यता कालीन वास्तुकला के बारे में बताइए।

(3) भारतीय वास्तुकला की नागर शैली को समझाइए।

प्र.7. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) द्रविड़ शैली पर आधारित प्रमुख मन्दिरों के बारे में बताइए।

अध्याय - 5

प्राचीन भारत में व्यापार और वाणिज्य

अध्ययन बिन्दु -

5.1 प्रस्तावना

5.2 व्यापार का क्रियान्वयन

5.3 प्राचीन भारत के व्यापार

5.4 वेदों में अवलोकिक व्यापार प्रणाली

5.5 प्राचीन भारत में श्रम एवं श्रम नीति

5.6 वस्तुओं का उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण

5.7 कर प्रणाली एवं राजकोष

5.8 मौर्यकालीन व्यापार एवं वाणिज्य

5.1 प्रस्तावना -

धन प्राप्ति के उद्देश्य से वस्तुओं का क्रय-विक्रय करना ही वाणिज्य कहलाता है। किसी उत्पादन या व्यवसाय का वह भाग जो उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की उनके उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के बीच विनिमय से सम्बन्ध रखता है, वाणिज्य कहलाता है। वाणिज्य के अन्तर्गत किसी आर्थिक महत्त्व की वस्तु जैसे सामान, सेवा, सूचना या धन को दो या दो से अधिक व्यक्ति या संस्थाओं के बीच आदान-प्रदान किया जाता है।

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।

उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥

(ऋग्वेद 10.31.2)

ऋग्वेद के इस मन्त्र में बताया गया है कि सभी मनुष्य धन-सम्पदा पर चिन्तन करें । धन की प्राप्ति के लिए विनम्रतापूर्वक, विवेक द्वारा सत्य एवं उत्तम मार्ग चुनकर लक्ष्मी प्राप्त करें। धन को विनम्रता एवं सत्य मार्ग पर चलकर प्राप्त करने की बात कही गयी है ।

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।

अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् ॥

(मनुस्मृति 4.3)

मनुस्मृति में कहा गया है कि मनुष्य को अपने जीवन यापन के लिए अनिन्दनीय कार्यों से धन का संग्रह करना चाहिए । संग्रहित धन के द्वारा जीवन निर्वाह के लिए भोजन, वस्त्र और मकान जैसी न्यूनतम वस्तुएँ प्राप्त होना चाहिए ।

5.2 व्यापार का क्रियान्वयन -

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः।

ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥

(ऋग्वेद. 1.31.8)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र में धन और यश प्राप्ति के लिए नवीन उद्योग लगाने का उल्लेख किया है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि व्यापार प्रणाली से परिचित थे।

व्यापार 2 प्रकार का होता है। देशी व्यापार (आन्तरिक) एवं विदेशी व्यापार (बाहरी) देशी व्यापार में वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय-विक्रय एक ही देश के अन्दर होता है। विदेशी व्यापार में वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय-विक्रय दूसरे देशों के साथ होता है।

थोक व्यापारी एवं खुदरा विक्रेता, व्यापार को सुचारू रुप से क्रियान्वित करने के लिए मध्यस्थ के रुप में कार्य करते हैं। थोक व्यापारी, उत्पादक या निर्माता से भारी मात्रा में सामान खरीदते हैं एवं कम मात्रा में खुदरा विक्रेताओं को बेचते हैं एवं खुदरा विक्रेता, उपभोक्ता की आवश्यकतानुसार सामान को उपभोक्ता को विक्रय करते हैं।

5.3 प्राचीन भारत में व्यापार -

सिन्धु घाटी सभ्यता की खुदाई के दौरान व्यापार से सम्बन्धित साक्ष्य प्राप्त हुए। यहाँ के नगरों में अनेक व्यवसाय प्रचलित थे। मिट्टी के बर्तन बनाने में ये लोग बहुत कुशल थे। मिट्टी के बर्तनों पर काले रंग से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बनाये जाते थे। कपड़ा बनाने का व्यवसाय उन्नत अवस्था में था। उसका विदेशों में भी निर्यात होता था। जौहरी का काम भी उन्नत अवस्था

में था। मनके और ताबीज बनाने का कार्य भी लोकप्रिय था। यहाँ के लोग पत्थर, धातु शल्क (हड्डी) आदि का व्यापार करते थे। एक बड़े भाग से ढेर सारी सील (मृन्मुद्रा), एकरुप लिपि और मानवीकृत माप तौल के प्रमाण मिले हैं। वे चक्के से भी परिचित थे, सम्भवतः रथ जैसे किसी वाहन का प्रयोग करते थे। मोहनजोदड़ो (सिंध), हड़प्पा (पंजाब), राखीगढी (हरियाणा), धोलावीरा (गुजरात) प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे। पहली शताब्दी जैसे – तक्षशिला, उज्जयिनी (उज्जैन), मथुरा, पटना, राजगृह, वाराणसी आदि व्यापारिक केन्द्र थे ।

5.4 वेदों मे अवलोकिक व्यापार प्रणाली -

यजुर्वेद में वर्णित से विकास करने वाले नागरिक जीवन का पता चलता है। वस्तुओं का क्रय-विक्रय वस्तु विनिमय प्रणाली का उपयोग हुआ तथा स्वर्ण का भी उपयोग किया गया।

शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः।

शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः॥ *(अथर्व. 20.131.5)*

अथर्ववेद में स्वर्ण सिक्के का उल्लेख है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में वस्तुओं के विनिमय के लिए मुद्रा का प्रचलन था।

वाणिज्य शब्द की उत्पत्ति वणिक् शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है, बनिया या व्यापारी। यजुर्वेद में वाणिज्य को तुला से भी सम्बोधित किया गया हैं। निरूक्त में वणिक् शब्द पाणिक शब्द से बना है पण अर्थात् रुपया या धन, जो रुपये या धन का लेन-देन करे वह पणिक् या वणिक् कहलाता है।

वेदों में यजुर्वेद के साथ-साथ अथर्ववेद में भी इसका वर्णन है।

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।

नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥

(अथर्व. 3-15-1)

अथर्ववेद में इन्द्र को व्यापारी के रूप में बताया गया है।

प्राचीन भारत में भी आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार प्रचलित था। व्यापारी लोग आपने व्यापार के कार्य को सम्पादित करने के लिए और माल ढोने के लिए बैल, घोड़ों, कुत्तों तथा गधों

का प्रयोग करते थे। प्राचीन भारत में सामूहिक व्यापार भी प्रचलित था। भारत का विदेशों के साथ संपर्क था और उनका परस्पर व्यापार विनिमिय भी हुआ करता था।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी सञ्चरन्ति।

ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि॥

(अथर्व. 3.15.2)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में व्यापार के विभिन्न मार्गों (स्थलों), आकाश मार्ग का भी उल्लेख है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में व्यापारिक मार्ग विकसित थे।

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्।

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतुः ॥

इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च॥

(अथर्व. 3.15.4)

अथर्ववेद के इस मन्त्र में व्यापार की क्रय विक्रय प्रणाली का उल्लेख मिलता है।

देहि मे ददामि ते ने मे धेहि नि ते दधे।

निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥

(यजु. 3.50)

यजुर्वेद के इस मन्त्र में आदान-प्रदान के तीन स्वरूपों का वर्णन है। प्रथम स्वरुप में एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु का लेना-देना। दूसरे स्वरूप में मेरी यह वस्तु आप अपने पास रख लें और अमुक वस्तु रखने का तात्पर्य यह है कि मैं पुनः आपकी वस्तु लौटाकर अपनी वस्तु जो रखी है, उसे ले जाऊँगा। आज इस प्रणाली पर बैंकों का व्यापार सञ्चालन हो रहा है। तीसरा प्रकार मोल खरीदने योग्य वस्तुओं को विनिमय द्रव्यों के माध्यम से तुम मुझसे यह ले लो और मुझे जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी वह मैं तुमसे खरीदूँगा। क्रय-विक्रय की व्यापारिक मण्डी बाजार आदि के रूप में इससे विकसित होती है।

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर।

(अथर्व. 3.24.5)

आयात द्वारा संग्रह सैकड़ों हाथों से करना चाहिए और हजारों हाथों से निर्यात करने का उल्लेख है अर्थात् वस्तुओं के निर्यात पर बल दिया गया है।

तुलायै वाणिजम्। *(यजु. 30.17)*

व्यापार में द्रव पदार्थ, स्थूल पदार्थ, बहुमूल्य पदार्थों आदि के लिए बिना नाप तौल के कार्य चल नहीं सकता। वैदिक वाङ्मय में नाप तौल की विभिन्न इकाईयों का उल्लेख है।

नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो

नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमः ।

(तैत्तिरीय संहिता 4.5.4.2)

तैत्तिरीय संहिता के इस मन्त्र में नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न औद्योगिक वर्ग जैसे - तक्षा, कर्मार, रथकार, हिरण्यकार, चर्मकार आदि का उल्लेख किया गया है।

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च।

वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत्॥

(ऋग्वेद 10.26.6)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र में भेड़ एवं बकरी के बालों से वस्त्र बनाने का उल्लेख है इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में ऊन से वस्त्र बनाने का कार्य किया जाता था।

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्।

तक्षा रिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥

(ऋग्वेद 9.112.1)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र में बताया गया है कि समाज के लोगों के कर्म (कार्य) अलग-अलग होते थे जैसे बढई लकड़ी काटने का कार्य करते थे, वैद्य रोग की चिकित्सा करने का कार्य करते थे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सभी लोगों का कार्य अलग-अलग था।

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।

नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव॥

(ऋग्वेद 9.112.3)

ऋग्वेद के इस मन्त्र में परिवार के सदस्यों के व्यवसाय के बारे में बताया है। परिवार के सभी सदस्य अलग-अलग कार्य करते थे।

5.5 प्राचीन भारत में श्रम एवं श्रम नीति -

प्राचीन भारत में श्रम नीति सुस्पष्ठ थी । श्रमिकों के जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम पारिश्रमिक निर्धारित था । कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार यह सीमा 60 पण थी । कार्य में लगने वाले समय, श्रमिकों के कौशल के आधार पर पारिश्रमिक दिया जाता था । शुक्राचार्य ने शुक्रनीतिसार में श्रमिकों को दिए जाने वाले पारिश्रमिक का उल्लेख किया है ।

अवश्यपोष्यभरणा भृतिर्मध्या प्रकीर्तिता ।

(शुक्रनीतिसार)

शुक्रनीतिसार के अनुसार श्रमिकों को उतना पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए जिससे उसके परिवार का जीवन निर्वाह हो सके ।

कार्यमाना कालमाना कार्यकालमितास्त्रिधा ।
भृतिरुक्ता तु तद्विज्ञैः सा देया भाषिता यथा ॥

(शुक्रनीतिसार)

शुक्राचार्य ने शुक्रनीतिसार में 3 प्रकार के श्रम का उल्लेख किया है जैसे – कार्यमना, कालमना एवं कार्य कालमना ।

यां यां कलां समाश्रित्य निपुणो यो हि मानवाः ।
नैपुण्यकरणे सम्यक् तां तां कुर्यात् स एव हि ॥

(शुक्रनीतिसार)

शुक्रनीतिसार में बताया गया है कि योग्यता, दक्षता एवं क्षमता के आधार पर श्रम (कार्य) का विभाजन करना चाहिए । व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार कार्य प्रदान करना चाहिए ।

5.6 वस्तुओं का उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण –

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार मानव का जीवन निर्वाह एवं अस्तित्त्व भूमि द्वारा प्रदत्त संसाधनों पर आधारित होता है । मनुष्य अपने श्रम के द्वारा भूमि के संसाधनों का उपयोग कर

वस्तुओं का उत्पादन करता है तथा उत्पादित वस्तुओं के अनुसार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजकोष में कर जमा करता है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे यह भी बताया गया कि अधिक करनही, यघपि बाजार को सुदृढ करने एवं वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करने से आर्थिक उन्नति होगी तथा राजकोष में वृद्धि होगी । कौटिल्य अर्थशास्त्र में वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के विषय में बताया गया है । ग्राहकों को वस्तु उचित मूल्य पर मिले, इसके लिए वस्तु की कुल लागत का पता लगाकर वस्तु का मूल्य निर्धारित किया जाता था ।

सुलभासुलभं त्वाच्शागुणत्व गुणसंश्रये ।
यथा कामात्पदार्थानामर्घहीनाधिकं भवेत् ॥

(शुक्रनीतिसार 3.40)

शुक्राचार्य ने शुक्रनीतिसार में वस्तुओं के मूल्य निर्धारण की तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है जैसे – उपयोगिता, सीमितता, हस्तांतरणीयता ।

यथा कामात्पदार्थानामर्घहीनाधिकं भवेत् ।

(शुक्रनीतिसार)

शुक्राचार्य ने शुक्रनीतिसार में वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन के विषय में उल्लेख किया है । वस्तुओं की माँग में वृद्धि या कमी के अनुसार वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि या कमी होती है ।

अर्घो अनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रतुरेव च ।

(याज्ञवल्कय स्मृति)

याज्ञवल्क्य स्मृति के इस श्लोक के अनुसार वस्तुओं का मूल्य निर्धारण ग्राहक एवं विक्रेता के हितों को ध्यान में रखकर करना चाहिए ।

5.7 कर प्रणाली एवं राजकोष –

आचार्य मनु के कर प्रणाली एवं राजकीय वित्त के विषय में मनुस्मृति में बताया है ।

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत् प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥

(मनुस्मृति 7.99)

मनुस्मृति के इस श्लोक के अनुसार राष्ट्र को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए शासक को अपने राजकीय कोष निश्चित मात्रा में कर लगाकर भरना चाहिए तथा कोष की वृद्धि करते रहना चाहिए ।

मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।

सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च स बान्धवः ॥

(मनुस्मृति 7.112)

मनुस्मृति के इस श्लोक के अनुसार श्रेष्ठ राजा अपनी प्रजा की आर्थिक स्थिति के अनुसार प्रजा से कर लेता है । मोह के वशीभूत होकर जो राजा अपनी प्रजा से अत्यधिक मात्रा में कर ग्रहण करता है, उस राज्य का शीघ्र ही पतन हो जाता है ।

यथाऽल्पाल्पमदन्त्याद्य वार्योकोवत्सषट्पदाः ।

तथाऽल्पालपो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद् राज्ञाब्दिकः करः ॥

(मनुस्मृति 7.129)

मनुस्मृति के इस श्लोक में प्रजा से अल्प कर संग्रह के विषय में बताया गया है । जिस प्रकार बछड़ा गाय से अल्प मात्रा में दूध, भौंरा शहद एकत्र करता है उसी प्रकार शासक को प्रजा से अल्प मात्रा में कर एकत्र करना चाहिए ।

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्याः स्थविरश्च यः ।

श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥

(मनुस्मृति 8.394)

मनुस्मृति के इस श्लोक मे दिव्यांगों, मंदबुद्धि से ग्रसित लोगों, वृद्धजनों, ज्ञान-साथना में रत विद्वानों छात्रों के लिए कार्य करने वाले व्यक्तियों से कर संग्रह नहीं करने का उल्लेख है ।

5.8 मौर्यकालीन व्यापार एवं वाणिज्य -

मौर्य काल में व्यापार (आन्तरिक एवं बाह्य), जल एवं स्थल दोनों मार्गों से होता था। आन्तरिक व्यापार के प्रमुख केन्द्र तक्षशिला, काशी, उज्जैन, कौशांबी, तोसली (कलिंग) राज्य

की राजधानी आदि थे । इस समय भारत का बाह्य व्यापार रोम, सीरिया, फारस, मिस्र तथा अन्य पश्चिमी देशों से होता था। यह व्यापार पश्चिमी भारत में भृगुकच्छ बन्दरगाह से तथा पूर्वी भारत में ताम्रलिपि के बन्दरगाह से किया जाता था। "मेगास्थनीज" ने ऐग्रोनोमोई नामक अधिकारी की चर्चा की है, जो मार्ग निर्माण का विशेष अधिकारी था'। भारत से मिस्र को हाथी के दाँत, कछुए, मोती, रंग, नील और लकड़ी का निर्यात होता था।

व्यापारिक मार्ग -

मुख्य रुप से चार व्यापारिक मार्गों का उल्लेख मिलता है -

- **प्रथम मार्ग (उत्तरापथ)** - उत्तर पश्चिम पुरुषपुर से ताम्रलिपि तक जाने वाला राजमार्ग
- **द्वितीय मार्ग** - पश्चिम में पाटल से पूर्व में कोशंबी के समीप उत्तरापथ मार्ग से मिलता था।
- **तृतीय मार्ग** - दक्षिण में प्रतिष्ठान से उत्तर में श्रावस्ती तक जाने वाला मार्ग
- **चतुर्थ मार्ग** - भृगकच्छ से मथुरा तक जाने वाला मार्ग

अभ्यास कार्य

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) किस व्यापार प्रणाली में वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय-विक्रय दूसरे देशों के साथ होता हैं ।

अ) आंतरिक व्यापार ब) विदेशी व्यापार

स) 'क' व 'ख' दोनों द) इनमें से कोई नहीं

(2) निम्न में से प्राचीन व्यापारिक केन्द्र था –

अ) धोलावीरा ब) वाराणसी

स) दिल्ली द) मथुरा

(3) अथर्ववेद में किस देवता को वणिक (व्यापारी) के रुप मे उल्लेख है -

अ) इन्द्र ब) गणेश

स) शिव द) कार्तिकेय

प्र.2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(1) वह व्यक्ति, जो विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग करता है ..... कहलाता है।

(2) थोक व्यापारी.....से भारी मात्रा में सामान खरीदते हैं।

(3) वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय-विक्रय एक ही देश के अन्दर होने वाले व्यापार को ..... कहते हैं।

प्र.3 सही या गलत बताइए -

(1) वस्तु विनिमय प्रणाली में वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है।

(2) यजुर्वेद में वाणिज्य को तुला से सम्बोधित किया गया है।

(3) प्राचीन भारत में व्यापार प्रणाली में स्वर्ण का उपयोग मुद्रा के रुप में किया गया।

प्र.4 सही जोड़ी मिलान कीजिए -

(1) उत्तरापथ मार्ग - भृगुकच्छ से मथुरा

(2) द्वितीय मार्ग - पाटल से कौशम्बी

(3) तृतीय मार्ग - पुरुषपुर से पाटलिपुत्र

(4) चतुर्थ मार्ग - दक्षिण में प्रतिष्ठान से उत्तर में श्रावस्ती तक

प्र.5 अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) व्यापार मुख्यतः कितने प्रकार के होते हैं ?

(2) किसी भी तरह के उत्पादों को बाहर के किसी देश से अपने देश में लाने को क्या कहते हैं?

(3) वस्तुओं एवं सेवाओं को अपने देश से दूसरे देशों में भेजना क्या कहलाता है?

प्र.6 लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) व्यापार से आप क्या समझते हैं।

(2) प्राचीन भारत के कुछ व्यापारिक केद्रों के नाम बताइए।

(3) व्यापार के क्रियान्वयन की प्रक्रिया को समझाइए।

प्र.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) मौर्यकालीन व्यापार व्यवस्था को समझाइए।

(2) सिन्धु घाटी सभ्यता के समय व्यापार किस प्रकार किया जाता था ?

अध्याय - 6

प्राचीन भारतीय व्यवहार विद्या एवं चिन्तन पद्धति

अध्ययन बिन्दु

6.1 प्रस्तावना

6.2 भारतीय चिन्तन प्रणाली

6.3 प्रमुख भारतीय चिन्तनकार

6.4 दर्शन सूत्र

6.1 प्रस्तावना -

प्राचीनकाल से ही भारतीयों का जीवन धर्म प्रेरक रहा है, धर्म ही भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। इसके अन्तर्गत नैतिकता, आदर्शवादिता तथा समर्पण की भावना निहित रही है। इस प्रकार सम्पूर्ण देश की संस्कृति धर्म प्रधान रही है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हम भारतीयों की मान्यताएँ, पाप-पुण्य की विवेचना, देवोपासना, पुनर्जन्म, आस्तिक-नास्तिक, स्वर्ग-नर्क, मोक्ष, लोक-परलोक, धर्म-अधर्म आदि सभी धर्म से अभिप्रेरित है।

6.2 भारतीय चिन्तन प्रणाली -

भारत में सभी प्रकार के ज्ञान का एक नैतिक लक्ष्य है, सभी प्राणियों का कल्याण और प्रसन्नता उपनिषद् में कहा गया है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।

(गरुडपुराण 35.51)

अर्थात् सम्पूर्ण विश्व के लोग सुखी रहें। ज्ञान, शरीर और मन को संकीर्ण सीमाओं से मुक्ति प्रदान करता है। भारतीय चिन्तन पद्धति की अपनी मौलिक विशेषताएँ है। यह समस्त मानव जाति का मार्गदर्शन करती है। जीवन के उदात्त पक्षों को रेखांकित करती हुई यह हमारे जीवन की विशेषताओं में सकारात्मक पक्षों को उभारकर, नैराश्य को समाप्त करती है। भारतीय चिन्तन

पद्धति में धर्म, भारतीय जन जीवन के साथ उसी प्रकार धनीभूत है, जिस प्रकार शरीर के साथ आत्मा है। मत्स्य पुराण में सृष्टि का आरम्भ एवं अन्त के आध्यात्मिक चिन्तन को बताया है। ऐतरेय ब्राह्मण में मनुष्य को कर्मयोगी बनने के लिए प्रेरित किया है। चिन्तन के जिन स्तरों को उस समय के मनीषियों ने स्पर्श किया था और भविष्य का जितना सफल चित्रण उन्होनें देखा और जाना था, वह निश्चय ही आश्चर्यजनक था। इन उद्घोषणाओं एवं चिन्तन में न केवल उस आदिकालीन सत्य की अनुभूति है, वरन् यह उस सनातन चिन्तन के व्यावहारिक पक्ष की प्रतिध्वनात्मक गूंज है, जो आज पाँच हजार वर्षों से भारतीय वायु में धर्म के रुप में गुम्फित है। धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष में पर्याप्त अन्तर रहते हुए भी वेदान्त एवं उपनिषद, ब्रह्मसूत्र तथा गीता के आध्यात्मिक सन्देश के सामने सभी शास्त्र मौन हो जाते हैं। इन्हीं आध्यात्मिक संदेशों की गूंज से लोगों में विनम्रता, करुणा और अहिंसा की भावना का विकास हुआ। इसी कारण भारत में लोग बिना तलवार और बन्दूक के विनम्र और सभ्य बन गए।

विद्याददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनात्धर्मः ततः सुखम् ॥

(हितोपदेश)

6.3 प्रमुख भारतीय चिन्तनकार -

1) **आदि शंकराचार्य** – यह भारत के महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक थे। इन्होंने अद्वैत वेदान्त को ठोस आधार प्रदान किया तथा सनातन धर्म की विविध विचारधाराओं का एकीकरण किया एवं ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या की।

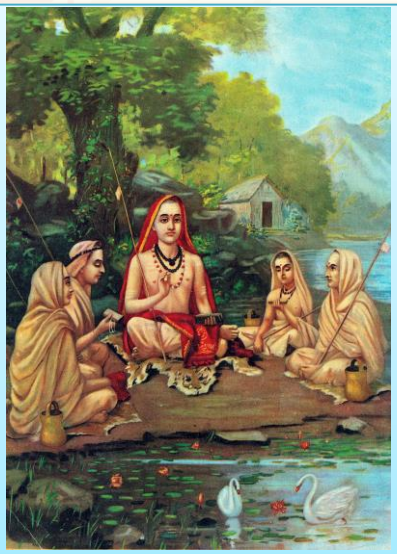
चित्र 6.1 - आदि शंकराचार्य

आदि शंकराचार्यजी के विचारोपदेश आत्मा और परमात्मा की एकरूपता पर आधारित है। जिसके अनुसार परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूप में रहता है। इन्होनें वेदों में लिखे ज्ञान को एकमात्र ईश्वर समझा तथा उसका प्रचार-प्रसार तथा

वार्ता पूरे भारतवर्ष में की।इसी क्रम में आदि शंकराचार्यजी द्वारा चारों वेदों के प्रचार-प्रसार, संरक्षण हेतु चार पीठों की स्थापना की ।

सारणी 6.1

क्रं.	पीठ	वेद	प्रथम शंकराचार्यजी
1	गोर्वधन पीठ, पुरी (उड़ीसा)	ऋग्वेद	परम पूज्य पद्मपादाचार्य
2	शारदा पीठ, द्वारका (गुजरात)	सामवेद	परम पूज्य हस्तामलकाचार्य
3	ज्योतिष् पीठ, बद्रीनाथ (उत्तराखण्ड)	अथर्ववेद	परम पूज्य तोटकाचार्य
4	श्रृंगेरी शारदा पीठ, श्रृंगेरी (कर्नाटक)	यजुर्वेद	परम पूज्य सुरेश्वराचार्य

अन्य भारतीय चिन्तनकारों में कुमारिल भट्ट, श्री रामानुचार्य, माधवाचार्य, स्वामी विवेकानंद, श्री अरबिन्दो, विनोबा भावे आदि थे।

2) **श्री रामानुजाचार्य** – यह विशिष्टाद्वैत दर्शन के प्रवर्तक थे। रामानुजाचार्य के दर्शन में सत् या परमसत् के सम्बन्ध में तीन स्तर माने गये हैं - ब्रह्म अर्थात् ईश्वर, चित् अर्थात् आत्म तत्त्व और अचित् अर्थात् प्रकृति तत्त्व।

इनके अनुसार शरीर एवं आत्मा पृथक नहीं है तथा आत्मा के उद्देश्य की पूर्ति के लिए शरीर कार्य करता है। इन्होंने मैसूर क्षेत्र में बारह वर्ष तक वैष्णव धर्म का प्रचार किया तथा वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए पूरे भारतवर्ष का भ्रमण किया।

6.4 दर्शन सूत्र -

हिन्दू धर्म में दर्शन अत्यन्त प्राचीन परम्परा रही है। वैदिक दर्शनों में षड्दर्शन (छः दर्शन) है।

सारणी 6.2

क्रं.	दर्शन	प्रणेता
1.	सांख्य	कपिल
2.	योग	पतञ्जलि
3.	न्याय	गौतम
4.	वैशेषिक	कणाद
5.	मीमांसा	जैमिनि
6.	वेदान्त	बादरायण

दर्शन शब्द का अर्थ होता है दिखाई देना। ऐसा ज्ञान विशेष जिसके द्वारा परमात्मा का दर्शन (साक्षात्कार) हो सके वह दर्शनशास्त्र कहलाता है। यह छः प्रकार से विवेचित है।

इनके आरम्भिक संकेत उपनिषदों में भी मिलते हैं। प्रत्येक दर्शन का आधारग्रन्थ एक दर्शनसूत्र है। "सूत्र" भारतीय दर्शन की एक अद्भुत शैली है। कुछ शब्दों में सिद्धान्त के सार का संकेत सूत्रों में रहता है। संक्षिप्त होने के कारण सूत्रों पर विस्तृत भाष्य की रचना हुई। गुरु- शिष्य परम्परा के अनुकूल दर्शन की शिक्षा और रचना इसका आधार है। ये छः दर्शन किसी न किसी रुप में आत्मा को मानते हैं। आत्मा की प्राप्ति ही मोक्ष है।

1) **सांख्य दर्शन** - सांख्य दर्शन के अनुसार हमें विवेकशील बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्रयास करने चाहिए जो हमे वास्तविक प्रकृति को समझने में सहायता करती है। महर्षि कपिल सांख्य दर्शन के प्रणेता है । इन्होने 527 सांख्यसूत्रों की रचना की जिन्हें 6 अध्याय में विभाजित किया । प्रथम अध्याय विषय निरूपित है । द्वितीय अध्याय में प्रधान कार्य । तृतीय अध्याय में विषयों से वैराग्य । चतुर्थ अध्याय में विरक्त पिंगलाकुरवादियों की आख्यायिकाएँ । पंचम अध्याय में परपक्षनिर्णय है । षष्ठम अध्याय में सभी का अर्थ संक्षेप है ।

संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते ।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन साख्यं प्रकीर्तितम् ।

(महाभारत)

सांख्यदर्शन में 25 तत्त्व है । 25 संख्यावाचक होने के कारण इसका नाम सांख्यदर्शन पड़ा ऐसी मान्यता है ।

2) **योग दर्शन** – महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन एवं साधना विषयक अनुशासन को चार भागों में विभाजित किया है -

क) समाधि पाद

ख) साधन पाद

ग) विभूति पाद

घ) कैवल्य पाद

इनमें कुल 195 सूत्र है।

समाधिपाद के प्रथम 2 सूत्र बहुत सार गर्भित है -

अथ योगानुशासनम् सूत्र 1

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः सूत्र 2

पहला सूत्र कहता है योग साधना एक प्रकार का अनुशासन है जिसका जीवन में पालन करना होता है। दूसरा सूत्र कहता है – योग से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है। अर्थात् यदि योग के अनुशासन का ठीक से पालन करें तो चित्त की वृत्तियाँ शान्त हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि योग चित्त के परिष्कार के लिए उत्तम साधना है।

3) **न्याय दर्शन -**

नीयते विवक्षितार्थः अनेन इति न्यायः

जिस साधन के द्वारा हम अपने विवक्षित (ज्ञेय) तत्त्व के पास पहुँच जाते हैं, उसे जान पाते हैं, वही साधन न्याय है। दूसरे शब्दों में, जिसकी सहायता से किसी सिद्धान्त पर पहुँचा जा सके, उसे न्याय कहते हैं। प्रमाणों के आधार पर किसी निर्णय पर पहुँचना ही न्याय है। **वात्स्यायन ने कहा है – प्रमाणैपरीक्षणं न्यायः।**

प्रमाणों द्वारा अर्थ (सिद्धान्त) का परीक्षण ही न्याय है। इस दृष्टि से जब कोई मनुष्य किसी विषय में कोई सिद्धान्त स्थिर करता है तो वहाँ न्याय की सहायता अपेक्षित होती है। इसलिए न्याय दर्शन विचारशील मानव समाज की मौलिक आवश्यकता है। उसके बिना न मनुष्य अपने विचारों एवं सिद्धान्तों एवं न प्रतिपक्षी के सैद्धान्तिक आघातों से अपने सिद्धान्त की रक्षा कर सकता है।

4) **वैशेषिक दर्शन** - वैशेषिक दर्शन में कहा गया किसी वस्तु या सामग्री का पूर्ण ज्ञान होने पर सम्बन्धित कार्य में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है।

5) **मीमांसा दर्शन** - मीमांसा शब्द का अर्थ है चिन्तन 'जिज्ञासा' अर्थात् जानने की इच्छा या लालसा। मनुष्य जब इस संसार में अवतरित हुआ उसकी प्रथम जिज्ञासा यही रही थी कि वह क्या करें।

"अथातो धर्मजिज्ञासा" करने योग्य कर्म के जानने की लालसा है।

6) **वेदान्त** - वेदान्त ज्ञानयोग का एक स्रोत है जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की ओर उत्प्रेरित करता है। इसका मुख्य स्रोत उपनिषद् है, उपनिषदों के अध्ययन से वेदों के सार को समझा जा सकता है। इसलिए इसे वेदान्त कहते हैं। **"वेदस्य अन्त इति वेदान्तः"** जो वेद का अन्तिम भाग है, वह वेदान्त कहा जाता है, जिसे हम उपनिषद् कहते हैं। वेद को चार भागों में विभाजित किया गया है।

क) संहिता ख) ब्राह्मण ग) आरण्यक घ) उपनिषद

उपनिषद् वेद का अन्तिम भाग है। अतः इसे वेदान्त नाम से भी जानते हैं।

अभ्यास कार्य

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) वैदिक दर्शनों की संख्या है –

अ) 5 ब) 6 स) 4 द) 7

(2) वेद का अंतिम भाग है –

अ) संहिता ब) ब्राह्मण

स) आरण्यक द) उपनिषद्

(3) श्री रामानुजाचार्य के दर्शन में सत् या परमसत् के सम्बन्ध में कितने स्तर माने गए हैं –

अ) 4 ब) 2

स) 3 द) 5

प्र.2 सही जोड़ी मिलान कीजिए -

(1) सांख्य दर्शन - महर्षि कणाद

(2) योग दर्शन - महर्षि गौतम

(3) न्याय दर्शन - महर्षि पतञ्जलि

(4) वैशेषिक दर्शन - महर्षि कपिल

प्र.3 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(1) श्री रामानुजाचार्य ने.....धर्म का प्रचार किया।

(2) वैदिक दर्शनों में कुल.....दर्शन हैं।

(3) योग दर्शन में कुल.....सूत्र हैं।

प्र.4 सही या गलत बताइए -

(1) आदि शंकराचार्य जी द्वारा ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या की गई।

(2) मत्स्य पुराण में सृष्टि के आरम्भ एवं अन्त के बारे में बताया गया है।

(3) श्री रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रर्वतक थे।

प्र.5 अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) प्रमाणों द्वारा सिद्धान्त का परीक्षण क्या कहलाता है ?

प्र.6 लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) प्रमुख भारतीय चिन्तनकार (दार्शनिक) के बारे में बताइए।

(2) वेदान्त दर्शन के बारे में बताइए।

अध्याय - 7

जल शोधन एवं मौसम विज्ञान

अध्ययन बिन्दु

7.1 प्रस्तावना

7.2 जल प्राप्ति के प्रारम्भिक संकेत

7.3 वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में जलशोधन

7.4 उपसंहार

7.1 प्रस्तावना -

वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में हमें जलविज्ञानीय चक्र अवधारणाएँ मिलती हैं। जो स्पष्ट रूप से भूजल के उपयोग को बताती है। जल के शोधकार्य का वर्णन प्रसिद्ध खगोलशास्त्री, ज्योतिषी और गणितज्ञ वराहमिहिर (540-587 ई.) द्वारा रचित बृहत्संहिता के दकार्गलनिरुपणम् नामक 53 वें अध्याय में मिलता है।

7.2 जल प्राप्ति के प्रारम्भिक संकेत -

बृहत्संहिता के दकार्गलनिरुपणम् का उपयोग 2.29 मीटर से लेकर 171.45 मीटर की गहराई तक के भूजल के स्त्रोतों का पता लगाने के लिए जलविज्ञानीय संकेतक के रुप में उपयोग किया जाता है।

इस प्राचीन शोध कार्य में वर्णित जलविज्ञानीय संकेतों में विभिन्न पौधों की प्रजातियाँ और उनकी आकारिकी और शारीरिक विशेषताएँ, दीमक के टीले, भू-भौतिकीय विशेषताएँ, मिट्टी और चट्टाने शामिल हैं। ये सभी संकेतन एक सूक्ष्म वातावरण में जैविक और भू-वैज्ञानिक सामाग्रियों के लिए विशिष्ट प्रतिक्रियाओं में भूजल पारिस्थितिकी तन्त्र में उच्च सापेक्ष आर्द्रता के परिणाम स्वरूप, एक शुष्क या अर्थ शुष्क क्षेत्र में विकसित होते हैं। पानी के जल स्तर में स्थान के अनुसार भिन्नता, गर्म और ठण्डे झरनों, कुँओं के माध्यम से भूजल उपयोग, कुँओं के निर्माण की विधियाँ और उपकरण दकार्गलनिरुपणम् में वर्णित है।

7.3 वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में जल शोधन -

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत् कृतं तदवलोक्य।

आर्याभिः कृतमेतद्वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥

(बृ.सं. दकार्गल. 53.99)

वराहमिहिर ने सास्वत द्वारा विज्ञान पर लिखित एक और ग्रन्थ का उपयोग भूमिगत जल और जल के स्तर पर किया है। निःसंदेह किसान (मनु) अपने पूर्व उत्तरवर्ती दकार्गलनिरुपणम् (भूमिगत जल का विज्ञान) बृहत् संहिता को वरीयता देते हैं।

भूमिगत जल और जल तालिका का एक विज्ञान के रुप में सम्बन्ध है, बृहत् संहिता के 53वें अध्याय को दकार्गलम् के रूप में नामित है। जलविज्ञान का संक्षिप्त सर्वेक्षण नीचे दिया गया है। दकार्गलम् के अलावा दो अन्य तकनीकी शब्दों शिरा और शिराविज्ञान का उपयोग इस अध्याय में किया है।

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोहं दकार्गलं येन जलौपलब्धिः।

पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः॥

(बृ.सं. दकार्गल. 53.1)

शिरा शब्द से तात्पर्य जल की धमनियाँ या जलधाराओं से होता है। श्लोक 53.1 हमें बताता है कि कुछ स्थानों पर पानी का स्तर अधिक है, दूसरों में यह कम है तथा यह मानव शरीर में नसों के समान है। श्लोक 53.2 से हम पता चलता है कि जल तालिका वर्षा जल का एक जटिल प्रकार्य है।

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात।

ननारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव॥

(बृ.सं.53.2)

जो पानी आकाश से गिरता है, उसमें मूल रुप से एक जैसा ही रंग व स्वाद होता है, लेकिन पृथिवी की सतह पर नीचे और अन्तःस्रवण के बाद अलग रंग और स्वाद ग्रहण करता है।

'दकार्गलम्' के बाद के छन्दों में, उप-क्षेत्र में पानी की उपस्थिति और विभिन्न स्थानों पर इसकी गहराई के प्रकार दिए गए हैं। श्लोक 53.3, 53.4 और 53.5 हमें सूचित करते हैं कि उपक्षेत्रों वाली धाराएँ सभी तिमाहियों में वर्षा के पानी द्वारा पोषित है और नौ धमनियों के अलावा, हजारों और भी है जो विभिन्न दिशाओं में बहती है।

पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनैन्दुशङ्करा देवाः।
विज्ञेऽतव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः॥

(बृ.सं. 53.3)

दिक्पतिसंज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी।
एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः॥

(बृ.सं.53.4)

पातालादूर्ध्वाशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च।
कोणादिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये॥

(बृ.सं.53.5)

चट्टान या मिट्टी की संरचना और पृथिवी की सतह से भौम जलस्तर की गहराई को विभिन्न छन्दों में सही ढंग से वर्णित किया गया है। श्लोक 53.7 में भेद्य और अभेद्य परतों के साथ जल की उपस्थिति के विभिन्न लक्षणों का वर्णन किया गया है।

चिह्नमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत्पीता।
पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः ॥

(बृ.सं.53.7)

खुदाई करने पर हमें आधे पुरुष (1 पुरुष = सीधे उठे हाथों सहित खड़े व्यक्ति की ऊँचाई 7.5 फीट) की गहराई पर पीला मेंढक मिलेगा। फिर पीली मिट्टी, फिर चट्टान और फिर पर्याप्त मात्रा में जल प्राप्त होगा ।

इसी तरह, कई अन्य छन्दों में लगभग 70 क्षेत्र स्थितियों या पारिस्थितिक विस्तार का वर्णन किया गया है, जिनसे भूमिगत झरनों की उपस्थिति का विस्तार करना सम्भव होगा।

वास्तव में वराहमिहिर द्वारा वर्णित भूमिगत जल की खोज की तकनीक, क्षेत्र में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले विशिष्ट संकेतों के एक समीप के अवलोकन पर निर्भर करती है, जिसमें वनस्पति, जीव, चट्टानें, मिट्टी और खनिज सम्मिलित है, जिनकी स्थिति और भिन्नता तार्किक या अनुभवजन्य रूप से आसपास के क्षेत्र में भूमिगत झरनों की उपस्थिति से जुड़ी हो सकती हैं।

वराहमिहिर द्वारा दिए गए विस्तृत विवरण में एक आश्चर्यचकित वाले कारक भूमिगत जल के सूचक के रूप में दीमक की गांठों की भूमिका है। भूमिगत जल की खोज के अतिरिक्त, कुछ अध्यायों के श्लोक, कुओं की खुदाई, प्रचलित हवाएँ के सन्दर्भ के साथ उनके संरेखण, कठोर पथरीली परतो से निपटना, पत्थर तोड़ने वाली छेनी तेज करना, स्वाद, गन्ध वाले पानी, औषधियों के साथ उपचार करना, लकड़ी लट्ठों और पत्थरों और पेड़ के रोपण के साथ किनारों का संरक्षण और ऐसे अन्य सम्बन्धित विषयों से सम्बन्धित हैं।

बृहत्संहिता के लगभग तैंतीस श्लोक, अकेले दीमक या अन्य वनस्पति के साथ जुड़े हुए हैं, तीस अकेले वनस्पति कारकों के साथ और शेष अन्य कारकों का उपयोग करके अन्वेषण में सहायता करने के लिए हैं।

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत् समीपस्थः।
तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वयं स्वादु ॥

(बृ.सं.53.9)

उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि ततोऽर्जुनाद्धस्तैः।
त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात् ॥

(बृ.सं.53.12)

यदि जम्बू वृक्ष के पूर्व में पास में एक दीमक का टीला हो, तो पेड़ के दक्षिण में तीन हाथ की दूरी पर दो पुरुषों की गहराई पर, लम्बे समय तक प्राप्त होने वाला बहुत सारा मीठा जल होता है (53.9) इसी प्रकार, उत्तर में दीमक के टीले वाला अर्जुन के पेड़ के पश्चिम में 3 हाथ की दूरी पर 3.5 पुरुषों की गहराई पर जल दिखाता है।

चित्ताकर्षी मिट्टी संरचना जिसे आम भाषा में 'एंट-हिल्स' के रूप में जाना जाता है, उस टीले के निर्माण में दीमक की टीलें बनाने वाली किस्म जिम्मेदार है, इस टीले को वैज्ञानिकों द्वारा

दीमक का नोल-माउंड या स्पियर्स कहा जाता है। ये ऊष्णकटिबन्धीय और उपोष्णकटिबन्धीय परिदृश्य की सबसे अधिक परिचित विशेषताएँ हैं और भूमिगत झरनों की अन्वेषण की तकनीक में हमारे लिए रुचिकर हैं।

वल्मीकानां पङ्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्चितः शिरा तदधः ॥

(बृ.सं.53.95)

यदि दीमक टीलों की एक पंक्ति में कोई उठा हुआ (लम्बा) टीला पाया जाता है, तो उसके भीतर जल वाहिनी पायी जाती है।

यदि पांच दीमकों का समूह एक जगह पाया जाता है और उनमें से मध्य वाली सफेद हो, वहाँ पर पञ्चपन पुरुषों की गहराई (अर्थात् 7.5 55 412.5 फीट) पर जल प्राप्त होगा ।

यह सामान्य अवलोकन का विषय है कि पेड़ो के बिल्कुल पास कई बार दीमक क्षेत्र मिलते हैं, और यह काफी आम दृश्य है कि ये पूरी तरह से घास या वनस्पति द्वारा ढके रहते हैं। कई बार दीमक का पता लगाने के लिए बहुत नजदीकी अवलोकन की आवश्यकता होती है। प्राचीन भारतीय विद्वान ने नीचे बताए गये अनुसार भूमिगत झरनों की खोज में इस साहचर्य का अत्यधिक उपयोग किया है।

जम्बूस्त्रिवृता मौर्वी शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा।
वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती गरुडवेगा च ॥

(बृ.सं.53.87)

सूकरिकमाषपर्णीव्याघ्रपदाश्चैति यद्यहेर्निलये।
वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरूषे तोयम् ॥

(बृ.सं.53.88)

यदि जम्बू, त्रिवृत, मौरव, सिसुमरी, सारिवा, शिव, श्यामा, वराहि, ज्योतिष्मति, गरुदेवगा, सुकारिका, माषपर्णी, व्याघ्रपदा के पेड़ और लताएँ दीमक के टीले के पास दिखती हैं, तो इसके 3 हाथ उत्तर में 3 पुरुष की गहराई पर जल है।

उपरोक्त श्लोकों में उल्लिखित वनस्पतियों के वानस्पतिक नाम हैं - जम्बू (यूजेनिया जाम्बोस, एंगेनिया जम्बोलाना), त्रिवृत (इपोमिया टेरपेथम), मौरवी (संसेवियरिएरेक्स-

बर्गियाना), सिसुमारी, सरिवा (हेमाइडेसमस इंडीक), सिवा (कई पौधे - कुकुमिस यूटिलिसस, टर्मिनलिया चेबुला, एम्बेलिका ऑफिसिनैलिस, सिनोडोन डेक्टाइलोन), शयामा (इचेनारपस फ्रुक्टेन्स – ब्लैक क्रीपर, क्रसना सरिवा, धतूरा धातु, अगलला रोक्स-बुर्गीयना, पनिकुम कोलनकम आदि), सुकारिका (ल्यकोपोडियम इम्ब्रिकाटम, आई. क्लोवेटम) माषपर्णी (ग्लाइसिन डेबाइटिस, जी. लैबिअलि)

इसी प्रकार, बृहत्संहिता के अध्याय 53 के विभिन्न अन्य श्लोक विभिन्न लक्षणों के संयोजन के साथ भूमिगत जल की खोज से सम्बन्धित हैं, जैसा नीचे दिया गया है -

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं चास्मिन् ॥

(बृ.सं.53.52)

यदि किसी घास विहिन स्थान पर, कही पर घास हो या घास वाले स्थान पर, घास रहित स्थान हो, तो यह पानी का संकेत है।

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात्।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥

(बृ.सं.53.53)

गैर-काँटेदार पेडों या इसके विपरीत के बीच में एक फलता-फूलता काँटेदार पेड पश्चिम की ओर 3 हाथों की दूरी पर 3.75 पुरुषों की गहराई पर पानी को इंगित करता है।

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥

(बृ.सं.53.60)

जहाँ जमीन से धारा या धुआँ निकलता है, वहाँ 2 पुरुषों की गहराई पर प्रचुर मात्रा में पानी की वाहिनी होगी। वराहमिहिर ने रेगिस्तानी क्षेत्र में भी भूमिगत जल होने की चर्चा की है। उप-भूभाग धारा या भौम जल स्तर रेगिस्तानी क्षेत्र में ऊँट की गर्दन का आकार लेता है और पृथिवी की सतह से काफी गहराई पर होता है ।

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि।

ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥

(बृ.सं.53.62)

आधुनिक उत्स्रुत कुओं की भूगर्भीय परत पद्धति पूरी तरह से इस बात की पुष्टि करती है। बृहत्संहिता के श्लोक 102 में यह वर्णन किया गया है कि पहाड़ी क्षेत्र में पानी कैसे पाया जाता है।

विभीतको वा मदयन्तिका वा यत्रास्ति तस्मिन पुरुषत्रयेऽम्भः।

स्यात्पवर्तस्योपरि पर्वतोऽन्यस्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥

(बृ.सं.53.102)

सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।

आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मृष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥

(बृ.सं.53.104)

उपरोक्त छन्द (54.104) मिट्टी और पानी का सम्बन्ध बताते हैं। यह कहता है कि ताँबे के रंग की कंकरीली और रेतीली मिट्टी पानी को कसैला बना देती है। भूरे रंग की मिट्टी क्षारीय जल को जन्म देती है, पीली मिट्टी जल को नमकीन बनाती है और नीली मिट्टी में भूमिगत जल शुद्ध और ताजा हो जाता है।

रामायण में हमें उत्स्रुत कुओं के बारे में पता चलता है। छन्द 6, 22.37-38 में कहा गया है कि भगवान राम के तीर द्वारा बनाए गए छेद के माध्यम से गहरी धरती से जल लगातार बल से निकलता है, यथा -

ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता॥

(रामायण VI.22.36)

तस्माद्व द्वणमुखात्तोयमुत्पपात रसातलात॥

(रामायण VI.22.37)

स बभूत् तदा कूपो व्रण इत्येवभिविश्रुतः।

सततं चोत्थितं तोयं समुद्रस्येव दृश्येत् ॥ *(रामायण VI.22.37)*

यह वैज्ञानिक रुप से बहुत स्पष्ट है कि उत्स्रुत कुएं बल द्वारा निरन्तर बहते हैं। वायु पुराण में विभिन्न भूमिगत संरचनाओं और स्थलाकृति का भी उल्लेख किया गया है। जैसे झीलें, बंजर पंथ, घाटी, पहाड़ों के बीच चट्टानी दरार घाटी (अन्दोणी) (38.36) पुराण के अध्याय 38 में पहाड़ी क्षेत्र में बड़ी संख्या में गर्म झरनों की बात की गई है।

तथा ह्यनत्व तप्तानि सरांसि द्विजसत्तमाः।

शैलकुक्ष्यन्तरस्थानि सहस्राणि शतानि च ॥

(वायुपुराण 38.78)

गोपथ ब्राह्मण के अध्येता भी दो प्रकार के झरनों या जल प्रपातों से अर्थात् गर्म और ठंडा से परिचित थे। विलक्षण स्थलाकृति के बारे में पता चलता है जहाँ पानी जमीन से पानी बुदबुदाते हुए निकलता है ।

नवस्वपि च वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः।

एकैकस्मिंस्तथा देशे नद्यश्चाद्रि विनिः सृताः ॥

(मार्कण्डेयपुराण 53.21)

यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम।

तेषुद्भिज्जानि तोयानि नैवं वार्यत्र भारते ॥

(मार्कण्डेयपुराण 53.22)

बृहत्संहिता के श्लोकों से पता चलता है कि बृहत्संहिता का अध्याय 53 भूजल अन्वेषण पर एक बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

7.4 उपसंहार -

अध्याय में प्रस्तुत श्लोक और सन्दर्भ बताते हैं कि भूजल उपस्थिति, वितरण, पूर्वेक्षण और उपयोग की वैज्ञानिक अवधारणाएँ अच्छी तरह से विकसित थी। यही कारण है कि हडप्पा सभ्यता के लोग कुओं की खुदाई करने और भूजल के उपयोग करने में सक्षम थे। शारीरिक विशेषताओं, दीमक के टीले, भूभौतिकीय विशेषताएँ, मिट्टी, वनस्पति, जीव, चट्टानें और खनिज आदि जैसे जल विज्ञानीय संकेतकों के द्वारा भूजल की उपस्थिति का पता लगाया गया था, जो

पूरी तरह से वैज्ञानिक है। प्राचीन भारतीयों द्वारा दीमक के टीले को भूजल के एक महत्त्वपूर्ण संकेतक के रूप में प्रयोग किया गया था। आधुनिक युग में भी इन की उपस्थिति और भिन्नता भूमिगत झरनों की उपलब्धता के साथ संकेतक के रुप में जुड़ी हुई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी यह स्थापित किया है कि टीले के भीतर नमी को व्यावहारिक रुप से संतृप्ति स्तर पर (99-100 प्रतिशत) रखा जाता है जो निकट में भूमिगत झरनों की उपस्थिति का संकेत है। ईसा से कई शताब्दियों पूर्व भारतीयों को भूमिगत जल धारक संरचनाओं, विभिन्न स्थानों पर भूजल के प्रवाह की दिशा में परिवर्तन, भिन्न भिन्न स्थान पर उच्च और निम्न भौम जल स्तर, गर्म और ठण्डे झरने, कुओं के माध्यम से भूजल उपयोग, कुओं के निर्माण के तरीके और उपकरण, भूमिगत जल की गुणवत्ता और यहाँ तक कि उत्स्रुत कूप प्रणाली के बारे में पता था। भूजल का यह उच्च स्तर का ज्ञान प्राचीन काल में भारत के नागरिकों द्वारा पूरी तरह से स्वतन्त्र रुप से विकसित किया गया था।

अभ्यास कार्य

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए।

(1) 1 पुरूष लगभग कितने फीट के बराबर होता है –

अ) 5 फीट ब) 7.5 फीट

स) 6 फीट द) 4.5 फीट

(2) गोपथ ब्राह्मण में कितने प्रकार के झरनों का उल्लेख है।

अ) 2 ब) 4

स) 5 द) 6

(3) जंबू वृक्ष का वानस्पतिक नाम है –

अ) यूजेनिया जाम्बोस ब) ब्लैक क्रीपर

स) इपोमिया टेरपेथम द) इनमें से कोई नहीं

प्र.2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(1) दकार्गलं.....का विज्ञान है।

(2) बृहत्संहिता के.....द्वारा लिखी गई है।

(3) दकार्गलनिरुपणम् में शिरा शब्द का तात्पर्य.....से होता है।

प्र.3 निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य (✓) अथवा असत्य (✗) का चिह्न अंकित कीजिए।

(1) बृहत्संहिता के अनुसार पीले रङ्ग की मिट्टी में भूमिगत जल नमकीन होता है।

(2) बृहत्संहिता के अनुसार भूरे रङ्ग की मिट्टी में भूमिगत जल क्षारीय होता है।

(3) बृहत्संहिता का दकार्गलनिरुपणं अध्याय भूजल अन्वेषण पर आधारित है।

प्र.4 सही जोड़ी मिलान कीजिए।

	कॉलम 'अ'	कॉलम 'ब'
(1)	शिरा	भूमिगत जल संकेतक
(2)	दीमक का टीला	जल धारा
(3)	वराहमिहिर	बृहत्संहिता

(4) महर्षि वाल्मीकि रामायण

प्र.5 अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) प्राचीन ग्रन्थ रामायण में हमे भूमिगत जल के किस जल स्त्रोत का वर्णन मिलता है?

प्र.6 लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) बृहत्संहिता में भूमिगत जल प्राप्ति के प्रारम्भिक संकेत कौन से हैं?

(2) वनस्पतिक वृक्षों की स्थिति के आधार भूमिगत जल कैसे प्राप्त करते हैं?

प्र.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1) प्राचीनकालीन जलशोधन के बारे में बताइए।

परियोजना कार्य

(1) अपने गुरूजी की सहायता अपनी पाठशाला में पाठ में दिए गए बृहत्संहिता के श्लोकों के आधार पर भूमिगत जल स्त्रोत का पता लगाने का प्रयास कीजिए।

(2) अपनी पाठशाला में पाठ में वर्णित वानस्पतिक वृक्षों का रोपण कीजिए।

अध्याय - 8

यज्ञ विद्या

अध्ययन बिन्दु

8.1 प्रस्तावना

8.2 यज्ञ शब्द का अर्थ

8.3 यज्ञ के प्रमुख साधन

8.4 यज्ञों का क्रम

8.5 यज्ञशाला कुण्ड परिमाण

8.6 हविर्यज्ञ संस्था

8.7 सोमयज्ञ

8.8 पाकयज्ञ संस्था

8.9 यज्ञों का वैज्ञानिक महत्त्व

8.1 प्रस्तावना -

वेद अपौरुषेय है, जो ज्ञान के भण्डार एवं भारतीय संस्कृति के है। हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं बौद्धिकता का उत्कर्ष वेदों से प्राप्त होता है। वैदिक ऋषि तपोवन में जीवन व्यतीत करते हुए सृष्टि के कल्याण के लिए परमपिता से प्रार्थना करते हैं।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म *(शतपथ ब्राह्मण 1.7.1.5)*

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः *(ऋग्वेद 1.164.50)*

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः *(अथर्ववेद 9.10.14)*

यज्ञो वै विष्णुः *(तैत्तिरीय संहिता. 1.7.4)*

इन प्रशस्तियों से युक्त वैदिक वाङ्मय में तथा श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक प्रमाण रूप वाक्यांशों –

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः *(श्रीमद्भगवद्गीता 3.9)*

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः *(श्रीमद्भगवद्गीता 3.13)*

तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् *(श्रीमद्भगवद्गीता 3.15)*

आदि की सम्यक् मीमांसा से यज्ञ के सर्वाधिक तथा साङ्गोपाङ्ग महत्ता का बोध होता है। वैदिक वाङ्मय में यज्ञ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृत्य के रुप में प्रतिष्ठित है। संहिताओं में यज्ञार्थ ही ऋक, यजुष तथा साम इन विधाओं में मन्त्रों का संकलन किया गया है।

8.2 यज्ञ शब्द का अर्थ -

यज्ञ शब्द **"यज् देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु"** धातु से भाव अर्थ में नङ् प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है – यज्ञ सम्बन्धी कृत्य। त्याग इसके पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हुए है। यहाँ यज्ञ शब्द देव पूजा - "यजनं इन्द्रादि देवानां पूजने सत्कारभावनं यज्ञः सङ्गतिकरण - यजनं धर्म-देश-जाति-मर्यादा रक्षायै महापुरुषाणां एकीकरणं यज्ञः" तथा दान-यजनं यथाशक्ति हुआ है, किन्तु यह शब्द का मुख्य अर्थ कात्यायन ने कात्यायन श्रौतसूत्र में बताते हुए लिखा है कि - यज्ञं व्याख्यास्यामः। द्रव्यं देवता त्यागः अर्थात् अग्नि आदि देवताओं के उद्देश्य से दधि, सोम, व्रीहियवादि द्रव्य का त्याग ही यज्ञ है।

8.3 यज्ञ के प्रमुख साधन -

ऋषियों ने यज्ञ के सात प्रमुख साधन बताए हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है -

1) **हवि** - यज्ञ का प्रथम साधन हवि है, जिसे यज्ञ का प्राण भी कहा जाता है। अग्नि में पकाई गई इस हवि को अमृत कहा गया है। हवि की ही भाँति यज्ञों में घृत का भी प्रयोग किया जाता है।

2) **समिधा** - यज्ञीय लकड़ियों को ही समिधा कहते हैं। सूर्य रश्मियों के विशेष रूप से घर माने जाने वाले बरगद, गूलर, पीपल की लकड़ियाँ समिधा के रूप में प्रयोग की जाती है।

3) **यज्ञ भूमि** - इसको यज्ञ-वेदी और यज्ञ-मण्डप भी कहते हैं। वस्तुतः यह पृथिवी ही सभी देवताओं का निवास स्थल है। अतः शुद्ध भूमि ही यज्ञ भूमि है।

4) **कुशा** - यज्ञ में बहुधा उपयोगी घास विशेष। कुशा एवं समिधाहरण ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारी के लिए नित्य कर्म बताया गया है। वह कुशा देवताओं एवं अदिति पुत्रों को सुखपूर्वक बैठने के लिए भूमि पर बिछायी जाती है।

5) **ऋत्विज्** - ऋत्विज् को ही विद्वानों ने निश्चित रुप से यज्ञ का साधन स्वीकार किया है। ये चार प्रकार के होते हैं -

   1) **होता** - यह ऋचाओं की आवृत्ति करता हुआ यज्ञ वेदी पर बैठता है।
   2) **अध्वर्यु** - यह यज्ञ के शरीर स्वरूप को बनाता है।
   3) **उद्गाता** - यह ऋचाओं के साम को गाता है।
   4) **ब्रह्मा** - यज्ञ में त्रुटि हो जाने पर उसे ठीक करवाता है।

6) **यज्ञ मन्त्र** - मन्त्र असाधारण शक्ति सम्पन्न बतलाए गए हैं। मन्त्र एवं देवता प्रसन्न होकर सिद्धियाँ प्रदान करते हैं।

7) **दक्षिणा** - दक्षिणा के बिना यज्ञ अपूर्ण होकर नष्ट हो जाता है। वेदों में अश्व, सोना-चाँदी, वस्त्रादि को दक्षिणा के रूप में देने का उल्लेख मिलता है, जिससे दाता द्युलोक में स्थित हो जाते हैं।

8.4 यज्ञों का क्रम -

गोपथकार के अनुसार यज्ञों का क्रम निम्नलिखित प्रकार है -

1) **अग्न्याधान** - सभी यज्ञ अग्न्याधानपूर्वक होते हैं। अग्न्याधान का अर्थ है - अग्नि को प्रज्वलित करना।

2) **अग्निहोत्र** - इसे सम्पूर्ण यज्ञों का मुख कहा जाता है। यह यज्ञ प्रातः एवं सायं करणीय होता है।

3) **दर्शपौर्णमास** - यह यज्ञ स्वर्ग प्राप्ति के लिए किया जाता है - स्वर्गीय हि वै लोकाय दर्शपूर्णमासौ इज्येते। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यज्ञ माना गया है।

4) **चातुर्मास्य** - यह प्रत्येक तीन मास के अनन्तर होने वाला यज्ञ है। इसके चार भेद हैं - क) वैश्वदेव ख) वरूणप्रघास ग) साकमेध घ) शुनासीरीय।

5) **सोमयाग** - इस यज्ञ का एक अन्य अग्निष्टोम भी है। यह यज्ञ पशुबलि से सम्बन्धित है।

6) **वाजपेय** - यह यज्ञ रथदौड़ से सम्बन्धित यज्ञ है, जो एक शरत्कालीन यज्ञ माना जाता है।

7) **राजसूय** - यही सोमयाग है, जो राजनीति से सम्बन्धित है और स्वर्ग प्राप्त्यर्थ किया जाता है।

8) **अश्वमेध** - यह भी राजनीति से सम्बन्धित है तथा इसे यज्ञों का राजा कहा जाता है।

9) **पञ्चमहायज्ञ** - स्मृतियों में विवेचित तथा वर्तमान में प्रचलित पञ्चमहायज्ञों (महामखा) का स्वरूप इस प्रकार है।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृ यज्ञस्तु तर्पणम्।

दैवोहोमो बलिर्भूतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ *(मनु. 3.70)*

मनुस्मृति के अनुसार पञ्चसूना (पाँच प्रकार के दैनिक पापों) से छुटकारा पाने के लिए इस पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान आवश्यक है। इनमें से ब्रह्मयज्ञ में अनुष्ठाता प्रतिदिन वेदादि ही शास्त्रों का अध्ययन एवं अध्यापन करता है। पितरों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन पितृयज्ञ है। यह तर्पण, बलिहरण एवं प्रतिदिन श्राद्ध द्वारा सम्पादित होता है। देवता का नाम लेकर स्वाहा शब्द के उच्चारण के साथ अग्नि में हवि अथवा समिधा डालना देवयज्ञ है। अतिथि का सत्कार या सम्मान करना नृयज्ञ कहलाता है। वैदिक वाङ्मय में उल्लेखित यज्ञों के अनेक भेद मिलते हैं, जिनका संकलन करके विद्वानों ने इन्हें निम्न तीन संस्थाओं में विभाजित किया है, जिनमें प्रायः सभी श्रौत (श्रुति सम्बन्धी) एवं स्मार्त (स्मृति सम्बन्धी) यज्ञों का समावेश हो जाता है –

8.5 यज्ञशाला कुण्ड परिमाण

स्मार्त कर्मकाण्ड विधानों में याज्ञिक प्रक्रिया को सविधि सम्पन्न करने के लिए शुल्वसूत्रों के आधार पर निर्मित ग्रन्थों में **''मण्डपकुण्डसिद्धि''** आदि अनेक ग्रन्थों में कुण्डों के परिमाण का प्रमाण प्राप्त होता है। इन्ही ग्रन्थों के आधार पर कुण्डों की आकृतियाँ एवं विस्तार का वर्णन भी मिलता है। यथा

प्राच्या: चतुष्कोणभगेन्दुखण्डत्रिकोणवृत्ताङ्गभुजाम्बुजानि।

अष्टास्त्रि शक्रेश्वरयोस्तुमध्ये वेदास्त्रिवावृत्तमुशन्तिकुण्डम्।।

(मण्डपमकुण्डसिद्धि 2/1)

अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञशालाके नवखण्डों में प्रत्येक खण्ड के अलग-अलग आकृतियों के कुण्ड बनाने का विधान प्राप्त है।

जैसे -

1. पूर्व - चतुरस्त्रकुण्ड
2. आग्नेय - योनीकुण्ड
3. दक्षिण - अर्धचन्द्रकुण्ड
4. नैऋत्य - त्रिकोणकुण्ड
5. पश्चिम - वृत्तकुण्ड
6. वायव्य - षडस्त्रकुण्ड
7. उत्तर - पद्मकुण्ड
8. ईशान - अष्टास्त्रकुण्ड
9. मध्य - चतुरस्त्रकुण्ड

नवकुण्डी पक्ष विधान में कुल कुण्डों कि आकृतियाँ आठ (8) प्रकार की होती है एवं दो (2) चतुरस्त्रकुण्डों का निर्माण होता है। इन आकृतियों में कुण्डों के विस्तार का परिमाण करते हुए ग्रन्थकार ने एक हस्त से लगाकर दस हस्त तक के कुण्डों का विधान बताया है।

यथा-

शतार्धे रत्नि स्याच्छतपरिमितेऽरत्निवितितं
सहस्रे हस्तं स्यादयुतहवने हस्तयुगले।
चतुर्हस्तं लक्षे प्रयुतहवने षड्करमितं
ककुब्भिर्वा कोटौ नृपकरमिति प्राहुरपरे।।

(कुण्डमण्डपसिद्धि 2/5)

अर्थात् कुण्डों का विस्तार आहुति संख्याओं के आधार पर भी बनाने का विधान है।

कुण्ड के पाँच अङ्ग बताये गये है – **गर्त, मेखला, योनी, कण्ठ तथा नाभि।**

इन पाँचों से समन्वित यज्ञीय स्थान विशेष को कुण्ड कि संज्ञा प्रदान कि गई है। कुण्डों के आकृतियों में विभिन्न आकृतियों का विधान अनेक फलश्रुतियों को भी कहता है।

सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शान्तिर्मृतिच्छिदे।

वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादिकुण्डके।।

(कुण्डमण्डपसिद्धि 2/4)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान में नवनिर्मित यज्ञशाला में समस्त कुण्डों को चतुर्हस्त प्रमाण से निर्मित किया गया है। क्रमानुसार कुण्डों का माप निम्न प्रकार से है-

1. **चतुरस्त्रकुण्ड -** हाथ 4 = 48 अंगुल वर्तमान के आधुनिक माप में 48 अंगुल = 36 इंच का चतुरस्त्र निर्मित है। इसमें चतुरस्त्र की गहराई+लम्बाई+चौड़ाई 48 अंगुल = 36 इंच।

2. **योनिकुण्ड** – योनिकुण्ड का आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल एवं आकृति व्यासार्ध 17 अंगुल, व्यास - 34 अंगुल, वर्धन-10 अंगुल, बृहत्लम्ब – 34 अंगुल अर्थात् सम्पूर्ण योनिकुण्ड के अन्दर का बृहत्लम्ब 43 इंच है।

3. **अर्धचन्द्र** – आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल =क्षेत्र= 48 अंगुल, व्यासार्ध – 38 अंगुल, व्यास 76 अंगुल, वृत्त 38 अंगुल = लम्बाई 54 इंच लम्बमान।

4. **त्रिकोणकुण्ड** – आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल, अग्रवृद्धि 16 अंगुल श्रोणी वृद्धि 12 अंगुल लम्बमान 48 इंच।

5. **वृत्तकुण्ड** – आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल, व्यासार्ध 27 अंगुल सम्पूर्ण व्यास 54 अंगुल, मध्य से वृत्त 27 अंगुल बराबर 19.05 इंच लम्ब का वृत्त।

6. **षडस्त्रकुण्ड-** षडस्त्रकुण्ड दो प्रकार के आकृतियों से होता है समषडस्त्र एवं विषमषडस्त्र । निर्मित विषमषडस्त्र का मान आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल, व्यासार्ध 36 अंगुल, बृहत्लम्ब 54 अंगुल 6 यव, बराबर 40.5 इंच।

7. **पद्मकुण्ड** – आधार क्षेत्रफल चतुरस्त्र 48 अंगुल, प्रथमवृत्त 6 अंगुल, पञ्चम व्यासार्ध 29 अंगुल एवं पञ्चमव्यास 59 अंगुल 5 यव 4 युका, बराबर पद्म से पद्म का लम्बमान 36 इंच अर्थात् चतुर्थव्यास।

8. **समअष्टास्त्र-** आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल, व्यासार्ध 28 अंगुल 4 यव 6 युका, भुज 21 अंगुल 6 यव 1 युका एवं लम्बमान 26 अंगुल 3 यव 3 युका बराबर 36 इंच।

परिधिमान (मेखला)

कुण्डमण्डपादि ग्रन्थों में त्रिमेखला को श्रेष्ठ माना गया है।

यथा-

नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डंश्रेष्ठं त्रिमेखलम।

(कुण्डमण्डपसिद्धि)

कुण्डमण्डपग्रन्थानुसार तिनों मेखलाओं का मान भिन्न-भिन्न बताया गया है तथापि वासिष्ठि पद्धत्यानुसार समस्त मेखलाओं का मान समान भी किया गया है।

'षडंशेनैव विस्तृता: तिस्त्रोमेखला स्यु: एतदुक्तं भवति' ।।

उस मान से कुण्ड के क्षेत्रफल का छठा हिस्सा मेखलाओं का मान होता है अत: 48 अंगुल के क्षेत्रफल के कुण्डों में षष्ठांश बराबर 8 अंगुल =6 इंच समस्त मेखलाओं का मान स्वीकार किया गया है।

योनीमान

समस्त कुण्डों में योनि का मान **'योनिव्यासार्धदीर्घा'** सूत्रानुसार 48 अंगुल के अर्धमान अर्थात 24 अंगुल के वर्गक्षेत्रफल में योनि का निर्माण किया गया है। क्योंकि समस्त कुण्डों का अधार चतुर्हस्त अर्थात 48 अंगुल को प्रमाण मानते हुए उनके व्यासार्ध से ही योनि का निर्माण किया गया है।

नाभिमान

नाभि का मान चतुर्हस्त कुण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के अनुसार 8 अंगुल सम्पूर्ण क्षेत्रफल एवं 4 अंगुल उच्छ्रिति अर्थात् उंचाई होगी एवं नाभि कि आकृति सभी कुण्डों में **'पद्माकार अथवा कुण्डसदृशा नाभि:'** वचनानुसार समस्त कुण्डों कि नाभि कुण्डाकार भी हो सकती है एवं सभी पद्माकार भी हो सकती है।

नवनिर्मित यज्ञशाला में उपर्युक्त वचनानुसार समस्त कुण्डों कि नाभियाँ पद्माकार आकृतियों में निर्मित कि गयी है।

8.6 हविर्यज्ञ संस्था -

इस यज्ञ के 7 प्रमुख यज्ञ इस प्रकार हैं -

1) अग्न्याधेय
2) अग्निहोत्र (अग्नये हूयते अस्मिन् तद् अग्नि होत्रम्)

3) दर्शपौर्णमास - दर्शयाग अमावस्या को तथा पौर्णमास याग पूर्णिमा तक यावज्जीवन करणीय होते हैं।

4) आग्रायण (नवशस्येष्टि या नवाह्नेष्टि)

5) चातुर्मास्य - यज्ञ चार-चार मासों में अनुष्ठेय

6) पशुबन्ध (निरूढपशुबन्ध) - पश्विजा संवत्सरे संवत्सरे प्रावृषि (प्रत्येक वर्ष वर्षा ऋतु में अनुष्ठे

7) सौत्रामणि - यह भी पशुयाग के ही अन्तर्गत आता है।

8.6 सोमयज्ञ –

यह संस्था भी 7 प्रमुख यज्ञों का समूह है जो निम्नलिखित प्रकार से है -

1) अग्निष्टोम संस्था - एषः प्रथमः सोमः। इस यज्ञ के करने का समय वसन्त ऋतु माना गया है।

2) अत्यग्निष्टोम (अत्यसस्येष्टि) - वस्तुतः अग्निष्टोम की ही विकृति है। इसमें प्रायः सम्पूर्ण विधि प्रकृति भूत अग्निष्टोमयागवत् होती है।

3) उक्थ्य -

4) षोडशी - यह भी अग्निष्टोम की विकृति है। प्रायः सभी विधान प्रकृति यागवत् होते हैं। वीर्य की कामना से करणीय हैं।

5) वाजपेय - अग्नादि की कामना करने वाले व्यक्ति द्वारा शरद् ऋतु में अनुष्ठेय।

6) अतिरात्र - अग्निष्टोम यज्ञ की विकृति यह यज्ञ ब्रह्मवर्चस् की कामना से किया जाता है।

7) आप्तोर्याम - यह अतिरात्र की विकृति है, जो पशु प्राप्ति की कामना से किया जाता है।

8.7 पाकयज्ञ संस्था -

इन्हे गृहयाग भी कहते हैं। गृह्यसूत्रों में वर्णित यज्ञ ही गृहयाग हैं। इसके सात प्रमुख यज्ञ अधोलिखित हैं -

1) अष्टकाश्राद्ध

2) पार्वणश्राद्ध

3) श्रावणी

4) आग्रायणी

5) मासिकश्राद्ध

6) आष्वयुजी

7) चैत्री

8.8 यज्ञों का वैज्ञानिक महत्त्व -

यज्ञ के संक्षिप्त स्वरूप विवेचन के पश्चात् उसके वैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन एवं अवबोध सरल एवं सुगम हो सकेगा। वर्तमान समय में समस्त मानव जाति के लिए अनेकानेक ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं, जिनका यदि समय रहते यथोचित निवारण न किया जाए तो मानव की अस्मिता ही संकट में पड़ जाएगी। इन समस्याओं में पर्यावरण की समस्या अनेक असाध्य रोगों की समस्या, मानसिक विकृतियाँ, वैश्विक तापमान में वृद्धि, अम्लवर्षा, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि आदि की समस्याएँ सम्पूर्ण विश्व के लिए निरन्तर चिन्ता एवं भय का कारण बनी हुई है। इन समस्याओं के निवारण के लिए जो भी आधुनिक भौतिक उपाय किए जा रहे हैं वह या तो पूर्णतया असफल हो रहे हैं या उनकी सफलता की अपनी सीमा है। इसके अतिरिक्त इन भौतिक उपायों से अन्य समस्याएँ भी जन्म ले रही है। यही कारण है कि वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व एक स्वर में प्राकृतिक उपायों को अपनाने का आह्वान कर रहा है। प्रकृति के प्रति विश्व की यह अवधारणा हमारी प्राचीन संस्कृति एंव यज्ञ-विधान का मुख्य समर्थन ही है।

पर्यावरण प्रदूषण उपर्युक्त समस्त समस्याओं की मूल है, जो लोभ-वृत्ति से पराभूत मनुष्य के द्वारा निसर्ग के नियमों के अतिक्रमण से जन्मी है। वैदिक वाङ्मय में वर्णित सम्पूर्ण यज्ञ-प्रक्रिया वातावरण के शोधन का उत्कृष्ट तरीका सिद्ध होता है। हमारे ऋषियों ने प्रातः, सायं अग्निहोत्र का विधान किया था, जिसमें घृत एवं औषधियों की आहुति दी जाती थी जिससे वे आज्यादि पदार्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर न केवल वातावरण को शुद्ध करते थे बल्कि इससे वातावरण सुगन्धित एवं पवित्र भी होता था।

यस्ते गन्धः पृथिवी सम्बभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।

(अथर्व 12.1.13)

पर्यावरण जनित एक प्रमुख समस्या है, जिसका वैज्ञानिकों के पास कोई कारगर उपाय नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में उल्लेख मिलता है कि सम्पूर्ण भूत अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वृष्टि से और वृष्टि यज्ञ से होती है -

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः।

(गीता 3.14)

हमारे मनीषी पूर्वजों ने **अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः** *(अथर्व. 9.15.14)* कहकर यज्ञ को सम्पूर्ण जगत का, सृष्टि का आधार बिन्दु बताया है। **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मः** *(शतपथ. ब्राह्मण 1.7.15)* के नियमानुसार यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है जिसका अभिप्राय है कि यज्ञ के द्वारा पर्यावरण को शुद्ध रखकर प्रदूषण जनित अनेक समस्याओं से बचा जा सकता है। यज्ञ की इसी विशेषता के कारण इसे प्रजापति की संज्ञा भी प्रदान की जाती है। आधुनिक वैज्ञानिक धारणा यह है कि वृक्ष एवं वनस्पतियाँ वायु प्रदूषण जनित विष आदि का संश्लेषण कर लेती है। इस कारण वृक्ष एवं वनस्पतियाँ पर्यावरण शोधन के सर्वाधिक उचित उपाय है -

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।

(अथर्व. 12.1.27)

अर्थात् जिस भूमि में वृक्ष एवं वनस्पतियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं वह भूमि विश्व के समस्त प्राणियों के भरण-पोषण में समर्थ होती है।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।

(अथर्व. 12.1.11)

हिमाच्छादित ऊँचे पर्वत एवं वनाच्छादित भूमि सभी प्राणियों के लिए आनन्द प्रदायक होती हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार जल हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन गैसों के निश्चित अनुपात के सम्मिश्रण से बना यौगिक है।

$$2H_2 + O_2 \longrightarrow 2H_2O$$

वेदों में गैसों को क्रमशः मित्र एवं वरुण नाम से अभिहित किया गया है। ऋग्वेद में ऋषि, पदार्थों को पवित्र करने में दक्ष और सबसे हल्की गैस (हाइड्रोजन गैस) का और रोग निवारक एवं स्वास्थ्यप्रद वरुण का इसलिए आह्वान करता है, क्योंकि ये दोनों जल निर्माण की क्रिया को सिद्ध करने वाली हैं -

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता॥

(ऋग्वेद. 1.2.7)

मित्र एवं वरुण के इसी गुण के कारण इन्हें वृष्टि के अधिपति की उपाधि से विभूषित कर वर्षा द्वारा जनमानस के कल्याण की इनसे प्रार्थना की गयी है - "मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपति तौ मावताम्।" आचार्य मनु का कथन है कि अग्नि में प्रक्षिप्त आहुति आदित्य लोक में प्रजाओं का पालन होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञ वृष्टि का मुख्य साधन है। इसके अतिरिक्त यज्ञ में प्रयुक्त घृत सूक्ष्मीकृत होकर वायु द्वारा बादलों तक पहुँचकर अपनी चिकनाई की एक परत उस पर जमा देता है, जिसके कारण बादल भारी होकर बरसने लगते हैं।

ओजोन (O_3) की परत क्षरण की समस्या एक ऐसी समस्या है जिसके कारण सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणें पृथिवी पर आकर वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं को नष्ट कर सकती हैं। इस ओजोन (O_3) की परत को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला रसायन क्लोरोफ्लोरोकार्बन (C.F.C.) है जिसकी मात्रा को वायुमण्डल में घटाकर इसके ह्रास को रोका जा सकता है। इस विषय में हमारे ऋषियों ने यज्ञ-विधि का आविष्कार कर निरन्तर कई सहस्त्र वर्षों तक इस समस्या से बचे रहें।

भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन प्रकृति के उपादनों में असीमित ऊर्जा की उपस्थिति को स्वीकार करता है और उस शक्ति के सन्तुलित रहने एवं कल्याणप्रद होने के लिए उसकी अतीव श्रद्धा के साथ स्तुति करता है। हमारे ऋषिगण इस बात के लिए निरन्तर प्रयासशील रहते थे कि प्राकृतिक सम्पदा नष्ट न हो और बार-बार उपयोग में आ सके। उनकी भावना थी कि पृथिवी पर समस्त जड़-चेतन प्राणियों के प्रसन्न रहने से ही सम्पूर्ण मानव जाति प्रसन्न रह सकती है। इसलिए वैदिक ऋचाओं में प्रकृति के प्रत्येक उपादान के कल्याणकारी होने की कामना की गयी है।

ॐ द्यौः शान्ति रन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधिः। *(यजु. 36.17)*

इस प्रकार प्रकृति के प्रति तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर तथा उसके प्रति श्रद्धा का विकास करके सम्पूर्ण पर्यावरण को विषाक्त होने से बचाया जा सकता है।

यज्ञ के द्वारा मानव जाति की भावना उदार बनती है जिसके फलस्वरूप वह समस्त विश्व में एकात्मकता का अनुभव करते हुए विश्वकल्याण की चिन्ता करने लगता है। उसका हृदय इतना विशाल हो जाता है कि उसके मन में अपने-पराए का भाव ही नहीं उत्पन्न होता -

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

(हितोपदेश 71)

इस भावना के पश्चात् कोई भी अनुष्ठान प्राणिमात्र के कल्याणार्थ ही सम्पादित किया जाता है -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

(बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.14)

इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञ-कर्म विश्वशान्ति के साधन के रुप में पर्याप्त उपयोगी है, जिसकी आज महती आवश्यकता अनुभूत की जा रही है। हमारे ऋषि-मुनि उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे, जो कि पदार्थ विज्ञान से लेकर चेतना के विभिन्न घटकों तक का गहन शोध करते थे। यज्ञ-विज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकता है। यह बात यज्ञों में प्रयुक्त होने वाली समिधाओं, हविष्य एवं यज्ञाग्नि के वैज्ञानिक अध्ययन से सम्यक् प्रमाणित हो जाती है। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान का मत है, कि व्याधियों के जन्मदाता रोगाणु (कीटाणु एवं कृमि) और विषाणु हैं। ये रोगाणु विविध प्रकार के तथा अतिसूक्ष्म होते हैं, जिसके कारण ये सूक्ष्मदर्शी जैसे यन्त्रों के माध्यम से ही देखे जा सकते हैं। ये कीटाणु एवं विषाणु जल, वायु भोज्य पदार्थों तथा अन्य अनेक माध्यमों से शरीर में प्रविष्ट होकर धीरे-धीरे अपना विकास एवं पोषण प्राप्त

करते रहते हैं। अतः व्याधियों की रोकथाम के लिए इन रोगाणुओं एवं विषाणुओं को नष्ट करना आवश्यक होता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इस रहस्य को समझकर उसी आधार पर यज्ञ-विज्ञान का आविष्कार किया था। वेदों में रोगाणुवाद की मान्यता के अनेक प्रमाण खोजे जा सकते हैं -

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्ट्यं क्रिमीन्।

अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ॥

(अथर्व 2.31.4)

अर्थात् आँतों में उत्पन्न होने वाले विशुचिका के कीट, दाद-खुजली आदि रोगों के उत्पादक कीट तथा राजयक्ष्मा आदि रोगों के कीट (अवस्कव), त्वचा के भीतर प्रवेश कर जाने वाले कीट, विकृत मांस को खाने वाले व्यध्वर नामक रोग कीटों को वेदवाणी में बतलाए गए उपायों द्वारा नष्ट करें। वेद मन्त्रों में अवस्कव, व्यध्वर, करुरु, अलगण्ड, यज्ञहन तथा शलुन जैसे रोग कीटों की जातियों के नाम हैं। वेदों में इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण विद्यमान हैं कि यज्ञ द्वारा व्याधियों से निजात पाया जा सकता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि हे व्याधिग्रस्त मनुष्य तुझे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए यज्ञ द्वारा अज्ञात रोगों से तथा तपेदिक जैसे ज्ञात रोगों से बचाता हूँ। इन सब अङ्गों को जकड़ने वाला रोग भी पकड़ ले तो भी इन्द्र (शुद्ध वायु या सूर्य) की गर्मी तथा अग्नि होमादि इस उक्त रोग से मुक्त करें। भौतिक ऊर्जा और प्राण ऊर्जा के सम्मेलन से एक विलक्षण ऊर्जा का आविर्भाव होता है जिसे यज्ञाग्नि कहते हैं। अग्नि हवन सामग्री को ग्रहण कर देवलोक तक पहुँचाता है और यजमान का रत्नधारण करने वाला होता है। यज्ञाग्नि में औषधीय गुणों से युक्त आम, पीपल, देवदारु आदि की सूखी लकड़ियाँ समिधा के रूप में तथा लौंग, ब्राह्मी, पुनर्नवा, खस, चन्दन, जावित्री, केशर, कमलगट्टा, इन्द्र, जौ, मुनक्का, किशमिश इत्यादि लगभग 35-40 प्रकार की वस्तुएँ हवन सामग्री के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप औषधीय गुणों से युक्त विशेष प्रकार की गैसों की उत्पत्ति होती है, जो वातावरण अथवा रोगी के शरीर में व्याप्त रोगाणुओं तथा विषाणुओं पर विनाशकारी आक्रमण करती है। इस प्रकार के वायुभूत औषधीय पदार्थों को व्याधिग्रस्त व्यक्ति श्वास द्वारा तथा रोम कूपों द्वारा ग्रहण करता है, जो पेट द्वारा पचाए गए इन पौष्टिक पदार्थों की तुलना में अधिक प्रभावशाली एवं

लाभदायक सिद्ध होते हैं, क्योंकि ये औषधीय पदार्थ पाचन हेतु गरिष्ठ होते हैं। इस प्रकार की यज्ञीय वायु में सुखाने का गुण भी होता है, जो फेफडों के घावों को सुखा देती है। यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है कि अग्नि में प्रक्षिप्त रोगनाशक, पुष्टि प्रदायक एवं जलादि संशोधक यज्ञ सामग्री वायु भूत होकर वायु द्वारा बहुत दूर तक ले जाई जाती है और वहाँ पहुँचकर रोगादिजनक पदार्थों को नष्ट कर देती है। वैज्ञानिक परीक्षणोपरान्त यह भी निष्कर्ष निकाला है कि अपराजिता, नीम, नागर मोथा एवं वचा औषधियों का धुँआ सभी प्रकार के कीटाणुओं/ विषाणुओं का शमन करने में समर्थ होता है। साथ ही इससे रक्त शोधन भी होता है। गुगल, लौंग, घी, शर्करा, चन्दन चूर्ण आदि का नित्य हवन करने वाले के शरीर में अग्नि तत्त्व की प्रधानता रहती है तथा उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

यज्ञाग्नि एक प्रकार से विद्युत उत्पादक केन्द्र का कार्य करती है। उसके साथ निर्धारित ध्वनि का समावेश हो जाने पर उत्पन्न शब्द शक्ति की क्षमता एवं उपयोगिता कई गुना बढ जाती है। शुद्ध वातावरण का सृजन विद्या एवं यज्ञ विज्ञान की समन्वित प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण फल है। यज्ञ में उद्गाता का महत्त्वपूर्ण पद इसलिए है कि मन्त्रों को आवश्यकतानुसार ध्वनियों में विधिपूर्वक गाया जा सके। इस प्रकार स्पष्ट है कि मन्त्र शक्ति एवं सूक्ष्म शब्द शक्ति यज्ञ के समय प्रयुक्त ऋचाओं का एक वैज्ञानिक परिणाम है जिससे व्यक्ति एवं समाज को आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक लाभ मिलता है।

यज्ञ चिकित्सा में कलश, चरु एवं पुरोडाश का भी वैज्ञानिक महत्त्व है। कलश में रखा जल यज्ञ प्रक्रिया के दौरान वाष्पीकृत वनौषधियों के सूक्ष्म गुणों तथा मन्त्रों के अलौकिक सामर्थ्य से युक्त होता रहता है। इसी प्रकार यज्ञ के अन्त में चरु अथवा पुरोडाश का हवन करने के बाद अवशिष्ट भाग को पुरुष को (पुरोडाश) अथवा स्त्री को (चरु) को भक्षण कराए जाने का विधान है। इस प्रकार के पुरोडाश अथवा चरु में विलक्षण औषधीय गुणों एवं अलौकिक मन्त्रशक्ति का समावेश हो जाता है, जिसके सेवन से याज्ञिकों में जीवनी शक्ति की अभिवृद्धि तथा सन्तानोत्पादक तत्त्वों की कमी की पूर्ति होती है। उपर्युक्त तथ्य की प्रमाणिकता अनेक आख्यानों से सिद्ध हो जाती है। राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में श्रृङ्गी ऋषि ने कौशल्या आदि रानियों को औषधीय गुणों से युक्त चरु का आस्वादन करवाया था। इसी प्रकार राजा चित्रकेतु के पुत्रेष्टि यज्ञ

के समापन पर अङ्गिरा ऋषि ने पटरानी कृताधुति को चरु (खीर) खिलाया था जिससे उन्होंने सुन्दर एवं तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया था। यज्ञ प्रक्रिया के वैज्ञानिक अध्ययनों के फलस्वरुप अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अप्रत्याशित रुप से विभिन्न रासायनिक पदार्थों की उत्पत्ति की पुष्टि की है। डॉ. एम. ट्रेल्ट ने लकड़ी के धूम में फार्मेल्डीहाइड की उपस्थिति को प्रमाणित किया है, जो एक शक्तिशाली कृमि-रोधक तथा सुगन्धित पदार्थ है। हवन में मेथिल अल्कोहल, एथिल अल्कोहल, प्रोपिल अल्कोहल आदि भी बनते हैं। अग्निहोत्र के समय विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के द्वारा फार्मिक, एसीटिक, वैरेलिक आदि अम्ल बनते हैं जो फसलों एवं पौधों को बीमारियों से बचाते हैं तथा उनकी ऊपज को बढाते हैं। यजुर्वेद के मन्त्र में मिलता है कि – मूल, शाखा, वनस्पति, फल एवं औषधियों को स्वस्थ रखने के लिए यज्ञ करना चाहिए।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥

(अथर्व. 3.11.1)

यज्ञ में प्रयुक्त हवि के द्वारा सूक्ष्म एवं अदृश्य रोगों से मुक्ति का उल्लेख है।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥

(अथर्व. 19.38.1)

धूपचिकित्सा (गूगल गन्ध) के द्वारा यक्ष्मादि रोग और संक्रामक रोग की चिकित्सा का उल्लेख है।

प्राणाश्च मेऽपानश्च मेऽव्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

(यजु. 18.2)

यज्ञ के द्वारा प्राण, मन, चित्त, बुद्धि, शरीर की इन्द्रियों के पुष्ट होने का उल्लेख है।

मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

(यजु. 18.11)

आरोग्य, स्वास्थ्य, जीवन-शक्ति यज्ञ के द्वारा सम्पन्न हो।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताँ श्रोत्रं यज्ञेन
कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन
कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम् ।

(यजु. 18.29)

यज्ञ से आयु की वृद्धि, प्राण, चक्षु, श्रोत्रादि, इन्द्रियाँ आदि बलवान होने का उल्लेख हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट कि यज्ञ प्रक्रिया एवं उसके उद्देश्य पूर्णतया वैज्ञानिक है जिसके माध्यम से चिकित्सा क्षेत्र में, पर्यावरण के क्षेत्र में तथा अनेक वैश्विक समस्याओं का समाधान हो सकता है। यज्ञ के दौरान उत्पन्न होने वाले औषधीय गुणों से युक्त एवं सूक्ष्मीकृत अनेक पदार्थ रोगाणु एवं विषाणु नाशक होने के कारण वर्तमान में चुनौती बनी स्वाइन फ्लू, बर्ड फ्लू, एड्स तथा डेंगू और कैंसर जैसी असाध्य बनी बीमारियों का उपचार सम्भव हो सकता है। इसके साथ-साथ समस्त पर्यावरण जनित समस्याओं का निदान भी सम्भव हो सकता है। वस्तुतः यज्ञों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भारत तथा विश्व के शीर्ष नेतृत्व को आगे आना चाहिए जिससे हमारे ऋषियों की विश्व-कल्याण का संकल्प सार्थक हो सके।

अभ्यास कार्य

प्र.1 सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) ओजोन परत को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला रसायन है –

अ) मेथेनॉल ब) सल्फ्यूरिक अम्ल

स) क्लोरोफ्लोरोकार्बन द) हाइड्रोक्लोरिक अम्ल

(2) ओजोन परत सूर्य से आने वाली निम्न किरण को रोकने का कार्य करती है –

अ) दृश्य किरण ब) अवरक्त विकिरण

स) पराबैंगनी विकिरण द) अल्फा किरण

(2) यज्ञीय लकड़ियों को कहते हैं –

अ) समिधा ब) कुशा

स) पंचपात्र घ) इनमें से कोई नहीं

प्र.2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(1) ऋषियों ने यज्ञों के .....प्रमुख कितने साधन बताए है।

(2) .....को सम्पूर्ण यज्ञों का मुख कहा जाता है।

(3) .....को यज्ञों का राजा कहा गया है।

(4) यज्ञों के द्वारा पर्यावरण को.....किया जाता है।

(5) वैदिक ऋचाओं में जल निर्माण की .....प्रक्रिया का वर्णन मिलता है।

प्र.3 निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य (✓) अथवा असत्य (✗) का चिह्न अंकित कीजिए।

(1) यज्ञ में प्रयुक्त हवि के द्वारा सूक्ष्म एवं अदृश्य रोगों से मुक्ति मिलती है ।

(2) वैदिक वाङ्मय में ऑक्सीजन गैस को मित्र के नाम से जाना जाता है ।

(3) यज्ञ के द्वारा वातावरण को शुद्ध किया जा सकता है ।

प्र.4 सही जोड़ी मिलान कीजिए।

	कॉलम 'अ'	कॉलम 'ब'
(1)	यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मः	अथर्ववेद

(2) अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः — शतपथ ब्राह्मण

(3) सोमयज्ञ — चैत्री

(4) पाकयज्ञ संस्था — अतिरात्र

प्र.5 अति लघूत्तरीय प्रश्न

(1) वेदों में गैसों को किस नाम से जाना गया है?

(2) वनस्पतियों एवं जीवों को नुकसान पहुँचाने वाली हानिकारक किरणों का क्या नाम है?

(3) C.F.C.का पूरा नाम क्या है ?

प्र.6 लघूत्तरीय प्रश्न

(1) यज्ञों का वैज्ञानिक महत्त्व विस्तारपूर्वक बताइए ।

(2) यज्ञ के प्रमुख साधन बताइए ।

प्र.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) यज्ञों के क्रम को विस्तारपूर्वक समझाइए ।

परियोजना कार्य

(1) अपनी पाठशाला में गुरुजी की सहायता से प्रतिमाह प्राकृतिक वनस्पतियों एवं औषधियों से निर्मित हवन सामग्री का प्रयोग कर लघु यज्ञ कीजिए।

(2) पाठ में वर्णित औषधियों एवं वनस्पतियों के पौधों को अपनी पाठशाला में रोपित कीजिए।

अध्याय - 9

प्राचीन भारतीय प्रौद्योगिकी

अध्ययन बिन्दु

9.1 प्रस्तावना

9.2 जल शुद्ध करने के उपाय

9.3 जल प्रबन्धन

9.4 वर्षामापक यन्त्र

9.5 अपशिष्ट जल प्रबन्धन और स्वच्छता

9.6 प्राचीन उपकरण / यन्त्र

9.7 शिला तोड़ने की पद्धति

9.8 बाणप्रयोग

9.9 किला-दुर्ग निर्माण

9.10 जल सिंचाई

9.11 रथ निर्माण

9.12 प्राचीन भारत में जल प्रबन्धन

9.1 प्रस्तावना -

भारतीय प्रौद्योगिकी का विकास प्राचीन समय में ही हो गया था। भारत में विज्ञान का उद्भव ईसा से 3000 वर्ष पूर्व हुआ है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त सिन्धु घाटी के प्रमाणों से वहाँ के लोगों की वैज्ञानिक दृष्टि तथा वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोगों का पता चलता है। प्राचीनकाल में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत, खगोल विज्ञान व गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और आर्यभट्ट द्वितीय और रसायन विज्ञान में नागार्जुन की अन्वेषणों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनकी अन्वेषणों का प्रयोग आज भी किसी न किसी रूप में हो रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता से सुनियोजित नगर व्यवस्था, भवन निर्माण कला, धातुविज्ञान, वस्त्र

निर्माण, परिवहन व्यवस्था के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं जो कि विकसित प्रौद्योगिकी की ओर संकेत करते हैं।

9.2 जल शुद्ध करने के उपाय -

अञ्जनमुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः।

कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः।

(बृहत्संहिता दकार्गल. 53.121)

अंजन (अणता का पेड़ जिसका प्रयोग स्त्रियाँ अंजन बनाने में करती है।) मोथा, वड़, राजकेशर, आँवला, निर्मली ये सभी बराबर भाग में चूर्ण बनाकर कुँए में डालने से जल शुद्ध होता हैं।

कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत्।

तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम् ॥

(बृहत्संहिता, दकार्गल. 53.122)

जिस कुँए का पानी दूषित, कड़ुआ, नमकीन अथवा विचित्र स्वाद वाला हो, दुर्गन्धयुक्त हो अथवा हानिकारक गैस या गन्ध कुँए से आती हो, उस कुँए में उपरोक्त चूर्ण 15-20 सेर (किलो) डालने से पानी साफ निर्मल स्वाद वाला, मीठा हो जाएगा।

9.3 जल प्रबन्धन -

भारत में शुष्कतम मौसम और पानी की कमी में जल प्रबन्धन के क्षेत्रो में कई अन्वेषी कार्यों को मूलरुप दिया है। सिन्धु घाटी सभ्यता के समय से इस पूरे क्षेत्र में सिंचाई प्रणाली, भिन्न-भिन्न प्रकार के कूपों, जल भण्डारण प्रणाली तथा न्यूनतम लागत और अनवरत जल सङ्ग्रहण तकनीक विकसित की गई थी। 3000 ई. पूर्व में गिरनार में बने जलाशय तथा पश्चिमी भारत में प्राचीन स्टैप – वैल्स कौशल के कुछ उदाहरण हैं। प्राचीन भारत में जल पर आधारित तकनीकें भी प्रचलन में थी। कौटिल्य अर्थशास्त्र में हस्तचालित कूलिंग उपकरण वारि यन्त्र

(हवा को ठण्ढा करने के लिए घूमता हुआ जल स्प्रे) का सन्दर्भ दिया है। पाणिनि (700 ई. पूर्व) की "अष्टाध्यायी" में वर्षामापी यन्त्रों का विधिवत सन्दर्भ दिया हैं।

चित्र 9.1 –धौलावीरा में परिष्कृत जलाशय

9.4 वर्षामापक यन्त्र -

मौर्य काल के दौरान, वर्षा मापक को "वर्धमान" के रुप में जाना जाता था। कौटिल्य ने इसके निर्माण का वर्णन इन शब्दों में किया है। भण्डार के सामने, एक कटोरा (कुण्डा) जिसका मुँह एक अर्तिनी (24 अंगुल लगभग 18 इंच) चौडा वर्षा मापक (वर्षामान) के रूप में स्थापित किया जाएगा।

वर्षा के मापन को महर्षि पाणिनि ने उदाहरण द्वारा समझाया है जैसे **"गोष्पदपरं वृष्टो देवः"** (अर्थात् गाय के खुर से बने गड्ढे के बराबर वर्षा) **सीता परं वृष्टो देवः** (वही स्वदेशी हल के जोतने से बनी लीक को भरने के बराबर वर्षा) यह स्पष्ट है कि गोष्पद सबसे कम वर्षा का मापक था।

हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ॥

(बृ. संहिता 23.2)

अर्थात् एक क्यूबिक मापने के लिए एक गोलाकार कटोरी का निर्माण (कुण्ड कर) कर वर्षा की मात्रा को बताना चाहिए।

9.5 अपशिष्ट जल प्रबन्धन और स्वच्छता -

घरों को जल निकासी चैनलों से जोड़ा गया था और अपशिष्ट जल को बिना किसी उपचार के सीधे सड़क के सीवर में डालने की अनुमति नहीं थी। सबसे पहले अपशिष्ट जल को टेरा-कोटा के पतले पाइप के माध्यम से एक छोटी कुंडी मे डाला जाता था। ठोस पदार्थ स्थिर होकर कुंडी में जमा हो जाते थे, तब कुंडी 75 प्रतिशत भरी होती थी, तरल पदार्थ सड़क पर जल निकासी चैनलों में बहा दिए जाते थे। जल निकासी चैनलों को ईटों और कटे पत्थरों द्वारा ढँका जाता था। इसके अलावा कई नालियों के सन्धि स्थल पर या जहाँ लम्बी दूरी के लिए नाले को बढाया गया था, वहाँ कूडे के गड्ढे बनाये गए थे जिससे जल निकासी प्रणालियों को अवरुद्ध होने से बचाया जा सके।

चित्र 9.2 –सिन्धु घाटी सभ्यता के शहरों मोहनजोदड़ो और लोथल की जल निकासी और सफाई व्यवस्था

9.6 बांस से बने पाइप का जलवाहक के रूप में उपयोग -

मेघालय में झरनों के पानी को रोकने और बांस की नलियों का उपयोग कर सिंचाई करने की प्रणाली का चलन रहा है इस प्रणाली द्वारा प्रति मिनट 18 से 20 लीटर पानी ले जाया जा सकता है।

बांस की नलियों से सिंचाई पान के पत्ते या काली मिर्च उगाने के लिए किया जाता है। जल मार्ग बनाने के लिए विभिन्न व्यास के बांसों का उपयोग किया जाता है। सबसे पहले बांस को छीलकर चिकना किया जाता है। उसके बाद मुख्य मार्ग से पानी को विभिन्न जगहों पर ले जाने और वितरित करने के लिए छोटी-छोटी नलियों का प्रयोग किया जाता है।

9.7 प्राचीन उपकरण / यन्त्र -

1) **पनचक्की** - पर्वतीय क्षेत्र में आटा पीसने की पनचक्की का उपयोग अत्यन्त प्राचीन है। पानी से चलने के कारण इसे "घट या घराट" कहते हैं। पनचक्कियाँ प्रायः सदा प्रवाहित नदियों के तट पर बनाई जाती हैं। नदी से पानी लेकर उसे लकडी के पनाले में प्रवाहित किया जाता है। जिससे पानी में तेज प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। इस प्रवाह के नीचे पंखेदार चक्र (फितौड़ा) रखकर उसके ऊपर चक्की के 2 पाट रखे जाते हैं। निचला चक्का भारी एवं स्थिर होता है पंखे के चक्र का बीच का ऊपर उठा नुकीला भाग ऊपरी चक्के के खांचे में निहित लोहे की खपच्ची (क्वेलार) में फँसाया जाता है। पानी के वेग से ज्यों ही पंखेदार चक्र घूमने लगता हैं, चक्की का ऊपरी चक्का भी घूमने लगता है।

चित्र 9.3 - पनचक्की

2) **ओखली / ओखल / उरवव** - इसमे मूसल की सहायता से प्रायः छिलकेदार अन्न कूटा जाता है। ओखली में प्रायः धान, मडुवा, जौ, बाजरा, गेहूँ कूटा जाता है। ओखली सामान्यतः 2 प्रकार की होती है।

(क) **पैडल वाली ओखली** – ओखली किसी कठोर पत्थर अथवा बाँज या सानड़ के गिल्टे के बीच में 7 से 10 इंच की गहराई का ऊपर की और चौड़ा एवं नीचे की और संकरा गढ्ढा बना कर निर्मित की जाती है। पत्थर की ओखली का वजन 1 या 2 मन से अधिक होता है। यह गढ्ढा किसी चौकोर पत्थर पर बनाया जाता है। ओखली को निर्धारित स्थान पर भूमि के अंदर गाड दिया जाता है। ओखली के चारों ओर पटाल (स्लेट) बिछा दिए जाते हैं। पैडल वाली ओखली से लकड़ी की ओखली सुविधाजनक होती है। इसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया सकता है। इस ओखली में मूसल का ऊपरी सिरा एक लम्बी लकड़ी में फँसाया जाता है। इस लम्बी लकड़ी को आधार की दो तख्तियों के सहारे टिका कर इसके दूसरे सिरे को पैडल से जोड़ दिया जाता है। लकड़ी को स्थिर रखने के लिए आधार की तख्तियों के ऊपर तिरछी लकड़ी

लगा दी जाती है। मूसल लम्बा व भारी होता है। पैडल के दूसरे सिरे पर उसकी दूरी उतनी होती है कि पैडल दबते ही वह उठ कर ठीक ओखली पर पड़े। मूसल के निचले सिरे पर लोहे का छल्ला लगा रहता है, जो अनाज की भूसी निकालने में सहायक होता है।

चित्र 9.4 – पैड़ल वाली ओखली

ख) साधारण ओखली – इसमें ओखली स्थिर और प्रायः पत्थर की होती है पर मूसल पैड़ल वाला अण्डाकार और लम्बा होता है। इसकी गोलाई लगभग 4 से 8 इंच तथा लम्बाई औसतन 5 से 6 ½ फीट तक होती है। मूसल को बीच से दोनों हाथों के बल से ओखली में मारा जाता है। ये मूसल बीच में हत्थे की जगह पतले व सिरों की ओर मोटे होते हैं। मूसल के निचले सिरे में कभी – कभी लोहे की कीले लगा दी जाती है एवं छल्ले लगा दिए जाते हैं जो भूसा निकालने में सहायता करते हैं।

चित्र 9.5 – साधारण ओखली

3) तेल का कोल्हू - इसके द्वारा सरसों, तिल, भंगीरा, पीली सरसों, अलसी आदि का तेल निकाला जाता है। तेल के कोल्हू में 2 फीट चौड़ी, 5 फीट लम्बी, 4 फीट मोटी आधार की वजनदार तख्ती स्थापित की जाती है। तख्ती के चारो और ½ इंच की बाड़ लगी रहती है तथा बीच में ओखली बनी रहती है। ओखली के तले में एक संकरा छेद होता है। इसे मजबूत पत्थरों पर टिका दिया जाता है। इस तख्ती के नीचे की कुछ जमीन खोदकर चूल्हानुमा जगह बनाई जाती है। जहाँ बर्तन रखा जाता है जिसमें तेल इकट्ठा होता है। तख्ती

चित्र 9.6 – तेल निकालने का कोल्हू

(घानी) के ओखलीनुमा छेद के खांचे में नीचे की ओर मोटा तथा ऊपर की ओर पतला लगभग 6 फीट खम्भा स्थापित किया जाता है। इसे बी कहते हैं। बी का सन्तुलन सही बनाए रखने के लिए बी से एक आड़ी तथा कमर तक की ऊंचाई पर एक तिरछी लकड़ी जुड़ी रहती है एवं उस पर पत्थर का भार रख दिया जाता है। जोड़ के कुछ बाहर की ओर निकला हुआ तिरछी लकड़ी का भाग हत्थे का काम करता है। भुने हुए बीजों को घानी में ड़ाला जाता है। कोल्हू पर बने हत्थे गोलाई में घुमाते ही लकड़ी का बी (खम्भा) धानि में घूमने लगता है और तेल की धार गिरने लगती है।

4) **गन्ने का कोल्हू** - इस कोल्हू में कल या बोलन तिरछी जोती जाती है। इनका भार कम और आकार लम्बा बेलनाकार होता हैं। 2 खम्भों में बने खाँचो में फँसा कर उसे खम्भे पर लगी चाबी से मजबूती से कस दिया जाता है। यह ऊपर की कल स्थिर रहती हैं। ऊपर की कल से सटा कर नीचे की कल भी लकड़ी के खम्भे के खाँचों में फंसा दी जाती है।

चित्र 9.7 - गन्ने का कोल्हू

नीचे की कल के एक और काँटेदार घिर्री होती है, जो ऊपरी कल की घिर्रो में फँसी रहती है। उपरी घिर्रो का सम्बन्ध हत्थे से रहता है, जो उस ओर के खम्भे से होकर बाहर निकला रहता है। निचली कल के दोनों खम्भों के बीच एक तिरछी लकड़ी के बीचो-बीच एक चौड़े मुँह वाली टीन की कुप्पी लगी रहती है, उसके नीचे गन्ने रस हेतु एक बर्तन को रखा जाता है। दोनों कलों के बीच गन्ना ड़ाल कर हत्था घुमाने से निचली कल घूमने लगती है और गन्नों से रस निकालकर कुप्पी से होता हुआ बर्तन में इकट्ठा होने लगता है।

9.8 शिला तोड़ने की पद्धति -

भेदं यदा नैति शिला तदानीं पलाशकाष्ठैः सह तिन्दुकानाम्।
प्रज्वालयित्वानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति ॥

(बृहत्संहिता दकार्गलनिरुपणम् 53.112)

कुँआ खोदते समय शक्तिशाली पत्थर या शिला आए और परिश्रमपूर्वक भी टूटे नहीं तो पलाश (ढाक) की लकड़ी तथा तेन्दुआ पेड़ की लकड़ी उस शिला या पत्थर के ऊपर रखकर जलाना चाहिए। जब पत्थर या शिला लाल रंग के जैसी दिखने लगे तो उस पर चूने के पानी का छींटा मारने से तथा हिलाने से शिला टूट जायेगी। बहुत शक्तिशाली शिला होने पर 2 से 7 बार उपरोक्त विधि से प्रयोग करने पर शिला निश्चित ही टूट जाएगी।

तक्रकाञ्जिकासुराः सकुलत्था योजितानि बदराणि च तस्मिन्।

सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तां दारयन्ति हि शिलां परिषेकैः ॥

(बृहत्संहिता दकार्गल. 53.114)

तक्रकाञ्जिकसुरा एक पात्र में तीन मात्रा लेकर, उसमें कत्था तथा बादराणि की लकड़ी डालकर 7 दिन सड़ने दे। तत्पश्चात कुँए में पूर्वोक्त लकड़ी सुलगाकर पत्थर लाल कर देवें। उस शिला पर उस सड़े सुरा के जल का छींटा मारने से शिला टूट जायेगी। शिला की शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक 7 बार ऐसा करना होगा।

नैम्बं पत्रं त्वक्च नालं तिलानां, सापामार्गं तिन्दुकं स्याद् गुडूची।

गोमूत्रेण स्रावितः क्षार एषां, षट्कृत्वोऽतस्तापितो भिधतेऽश्मा॥

(बृहत्संहिता दकार्गल. 53.115)

नीबूं का पत्ता, छाल, तलसरा, अपामार्ग, तिन्दुक की लकड़ी, गुडुची (गिलोय) आदि को गोमूत्र में रखकर क्षार बनावें। तत्पश्चात् कुँआ के पत्थर को जलाकर लाल कर दे एवं उसका (क्षार का) छींटा 9 बार मारें, तो वज्र जैसी शिला भी टूट जायेगी।

9.9 बाणप्रयोग -

वेंदो में अस्त्र के लिए हेति और मेनि शब्द का प्रयोग किया गया है। ये प्राकृतिक शक्तियों से जन्य होते थे जैसे - विद्युत, अग्नि, वायु आदि से जन्य।

1) आग्नेय अस्त्र या अग्निबाण -

तेषां वो अग्निमूढानाम् इन्द्रो हन्तु वरंवरम्।

(अथर्व 6.67.2)

चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता।

(अथर्व 3.1.6)

यह अग्नि के साथ धुआँ भी फेकता था, जिससे शत्रु बेहोश हो जाते थे। अथर्ववेद में वर्णन है कि आग्नेय अस्त्र के प्रयोग से शत्रु बेहोश हो गए और इन्द्र ने उनके सिर काट लिए। इनके प्रयोग से आँख से अन्धा होने का वर्णन है। शत्रु अन्धे हो गए और सेना पराजित हो गई।

2) वायव्य अस्त्र -

अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय।

(अथर्व 3.1.5)

इसे मारुत अस्त्र भी कहते हैं इसके प्रयोग से आंधी, तेज हवा चलने लगती है और शत्रु किंकर्तव्यमूढ़ हो जाते थे। अथर्ववेद में वर्णन है कि इन्द्र इस अस्त्र के प्रयोग से शत्रुओं को इधर-उधर भगा देते हैं।

3) पाशुपत अस्त्र -

इसको रुद्रास्त्र भी कहते हैं। पशुपति या रुद्र शिव का नाम है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में इस अस्त्र का वर्णन है।

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः।

(ऋग 2.33.14)

4) ब्रह्मास्त्र -

ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते।

मेन्या मेनिरसि।

(अथर्व 5.6.9)

इसकी प्रहारक शक्ति असाधारण थी। इसकी कोई काट नही थी।

5) आथर्वण वस्त्र -

इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्।

(अथर्व 4.3.7)

आथर्वण अस्त्र का उल्लेख है ।

6) सम्मोहन अस्त्र -

अग्निर्नः शत्रून्प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तं श्च कृणवज्जातवेदाः ॥

(अथर्व. 3.1.1)

इस अस्त्र के प्रयोग से शत्रु सेना को बेहोश कर दिया जाता था और उनके हाथ काट लिए जाते थे।

7) तामस अस्त्र -

तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात्।

(अथर्व 3.2.6)

यह अस्त्र अश्रुगैस के तुल्य होता था। अस्त्र से निकलने वाले धुएँ से शत्रुसैनिकों का दम घुटने लगता था और वे इधर उधर भागने लगते थे। इस कारण वे एक दूसरे को पहचान नहीं पाते थे। इस अस्त्र का दूसरा नाम 'अप्वा' भी था। यह अंगों को शिथिल कर देता था।

8) ऐन्द्र शस्त्र या वज्र -

अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिः।

(ऋग 1.80.12)

वज्रेण त्रिषन्धिना।

(अथर्व 11.10.3)

यह अयस (लोहे) का बना होता था। इसमें तीन सन्धियाँ जोड़ थे, अतः इसे त्रिसन्धि कहते हैं। इन्द्र के वज्र को हजार नोक वाला बताया है।

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन।

(अथर्व 12.5.66)

मेनिः शतवधा हि सा।

(अथर्व 12.5.16)

अथर्ववेद में वर्णन है 100 गांठ वाला भी वज्र होता था और इससे एक साथ 100 व्यक्तियों का वध किया जा सकता था।

9) **यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं, मुक्तसन्धारितं तथा।**
अमुक्तं बाहुयुद्धं च, पञ्चधा तत् प्रकीर्तितम्।

(अग्नि पुराण)

1) यन्त्रमुक्त - यन्त्रो से फेंके जाने वाले। जैसे - प्रक्षेपक या बन्दूक आदि से छोड़े जाने वाले गोले।
2) प्राणिमुक्त - हाथ से फेंके जाने वाले। जैसे - भाला
3) मुक्तसन्धारित - नुकीला आयुध जिसके द्वारा वस्तु खींचकर पास लायी जाए। जैसे- काँटेदार जाल
4) अमुक्त - हाथ में रखे जाने वाले जैसे - खड्ग (तलवार)
5) बाहुयुद्ध - बाहुयुद्ध वाले उपकरण

10) बाण निर्माण -

बाण का अगला भाग लोहे, हाँथी के दाँत या अन्य कठोर पदार्थ से बनता था। ऋग्वेद में वर्णन है कि बहुत बड़े-बड़े बाणों में से सौ तक नोक भी होती थी और उनमें सैकड़ों पंख भी लगे होते थे।

रुद्र के विषय में कहा गया है कि उनके पास ऐसा धनुष बाण था, जिससे सैकड़ों और हजारों लोगो को मारा जा सकता था।

धनुर्विभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम्।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥

(अथर्व 11.2.12)

कुछ बाणों में विष लगे होते थे। इनका विष उतारने की विधि अथर्ववेद में दी गई है।

शल्याद् विषं निरवोचम्।

(अथर्व 4.6.5)

11) **चक्र -**

नि चक्रेण रथ्या।

(ऋग 1.53.9)

ऋग्वेद में चक्र का आयुध के रुप में वर्णन है।

क) **वज्र -**

वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।

(ऋग्वेद 2.15.3)

वज्र शब्द से डायनामाइट का संकेत मिलता है। वज्र से पहाड़ तोड़कर नदियों का मार्ग बनाया गया।

ख) **उल्का -**

वि सृज विष्वगुल्काः।

(ऋग 4.4.2, यजु. 13.10)

यह आग का गोला होता था। एक साथ चारों ओर शत्रुओं पर फेंका जा सकता था और उन्हें जलाया भी जा सकता था।

रासायनिक बाण -

1) **धूमाक्षी अस्त्र -**

धूमाक्षी सं पततु।

(अथर्व 11.10.7)

यह शत्रुओं पर फेंका जाता था और इसके प्रयोग से शत्रुओं की आँखो में धुआँ घुस जाता था।

2) **चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिदिङ्गकम्बलिशतकन्देध्मकृकलासचूर्णं गृहगौलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णभल्लातकावल्गुकारसंयुक्तं- सद्यःप्राणहरमेतेषां वा धूमः ।**

(कौटिल्य अर्थ. 177.1.4)

भिलावा और बकुची के रस से चितकबरा, मेंढक, तीतर, कानखजुरा आदि का चूर्ण मिलाया जाए तो उसका धुआँ तत्काल प्राणों का नाश करता है।

3) **विषाक्त धूम -**

कृष्णसर्पप्रियङ्गुभिः सद्यः प्राणहरो मतः।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र)

यदि काले साँप को प्रियंगु (कागुन) के साथ मिलाकर उसका धुआँ किया जाए तो वह भी तत्काल प्राणनाशक होता है।

4) **हवा के साथ विष फैलाना -**

शतकर्दम... प्रवातानुवाते प्रणीतो यावत् चरति तरवत् मारयति।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र)

शतावरी, कर्दम, केकड़ा, कनेर, कटुतुंबी और मछली का धुआँ, अरंड, ढाक और पुआल के साथ मिलाकर किया जाए और उसे हवा की दिशा में उड़ाया जाए तो जहाँ तक धुआँ जाएगा वहाँ तक लोगों को मार देगा।

5) **जल को विषाक्त करना -**

शारिका....अन्धीकरणमञ्जनम् उदकदूषणं च।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र)

मैंना, कबूतर, बगुला और बगुली की विष्ठा (मल) को आक, अक्षि, पीलु और सेहुड के दूध में पीस कर अंजन तैयार करे तो वह जल को भी जहरीला बना देता है।

किला-दुर्ग निर्माण -

शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षा के लिए दुर्गों का निर्माण किया जाता था। विश्वकर्मा - वास्तुशास्त्र के अनुसार स्थान भेद और वास्तु के आधार पर 12 प्रकार के दुर्ग थे।

1) गिरि दुर्ग
2) वन दुर्ग (वनों से घिरा हुआ)
3) जल दुर्ग (नदी या समुद्र में बना हुआ)

4) ईरिन्दुर्ग (रेगिस्तान में)

5) दैव दुर्ग (प्राकृतिक रुप से बना हुआ)

6) एकमुख दुर्ग

7) द्विमुख दुर्ग

8) चतुर्मुख दुर्ग - अन्तिम तीनों दुर्ग नदी या समुद्र के किनारे बनाए जाते थे तथा इनमें क्रमशः 1, 2 तथा 4 द्वार होते थे।

9) कूर्म दुर्ग - इसका निर्माण शत्रु को धोखा देकर पकड़ने लिए होता था तथा यह वन में या पर्वत की तलहटी में बनाया जाता था।

10) पारावत दुर्ग - यह ऐसा दुर्ग होता था, जो वन या पर्वत जैसे सुरक्षित स्थान में बनाया जाता था इसका उपयोग युद्धकाल में अस्थायी रूप से आराम करने के लिए किया जाता था एवं इसमें लम्बे समय तक रहने के लिए खाद्य सामग्री होती थी।

11) प्रभु दुर्ग

12) युद्ध दुर्ग - इसमें भूमिगत मार्ग और सीढियाँ होती थी जिनमें राजा की इच्छानुसार नागरिक रहते थे। समरांगणसूत्रधार में भी ऐसे बहुत से दुर्गों के उदाहरण है परंतु भोज ने "युक्तिकल्पतरु" में प्राकृतिक एवं कृत्रिम दो प्रकार के दुर्गों का वर्णन किया है। प्राकृतिक दुर्ग सुरक्षा की मरुस्थल और नदी आदि आवृत थी। कृत्रिम दुर्ग में गवाक्षों युक्त सुरक्षा दीवारें एवं चारों और खाई होती थी ।

मानसार और मयमत में इनका वर्गीकरण इस प्रकार है -

उपयोगिता के आधार पर संस्कृत वाङ्मय में वर्णित दुर्गों को इस प्रकार विभाजित किया जाता हैं।

1) गिरि दुर्ग

2) जल दुर्ग

3) धान्वन दुर्ग - निरूदक और ऐरण (रेगिस्तान में)

4) वन दुर्ग

5) महीदुर्ग - यथा पारिध, पंक या मुद्दुर्ग (मिट्टी के बनें)

6) नृ-दुर्ग-सैन्यदुर्ग, सहायदुर्ग (बहुत से सैनिकों द्वारा रक्षित)

7) मिश्र दुर्ग (गिरिदुर्ग और वनदुर्ग का मिश्रण)

8) दैव दुर्ग

9) कृतक दुर्ग (कृत्रिम)

इन सब में कृत्रिम दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ माना है।

शुक्राचार्य के अनुसार -

सर्वेषामेव दुर्गाणां पार्वतीयं प्रशस्यते।

शुक्र के अनुसार सभी दुर्गों में पर्वत का बना दुर्ग सर्वश्रेष्ठ मजबूत होता है।

9.10 जल सिंचाई -

वेदों में सिंचाई के लिए उचित प्रयत्न करने का निर्देश है। ऋग्वेद में जल के 2 प्रकार बताए गए है, वे है खनित्रिमा एवं स्वयंजा -

या आपो दिव्या उत वास्रवन्ति

खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।

(ऋग्वेद 7/49/2)

नदी का जल 'स्वयंजा' एवं कूपादि के जल 'खनित्रिमा' कहा जाता है। कूप से जल निकालने की प्रक्रिया ऋग्वेद में बताई गई है। नाली बनाकर जल खेत में पहुँचाया जाता था।

कृषि पराशर में नलारोपण के बारे में बताया है इसके द्वारा जलाभाव में सिंचाई का कार्य किया जाता था।

अथ कार्तिक संङ्क्रान्यां क्षेत्रे च रोपयेन्नलम्

केदारेशानकोणे च सपत्नं कृषकः शुचिः।

(कृ. प. 198)

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम्

वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥

(अथर्व. 4.15.2)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में वर्षा जल के द्वारा गेहूँ, जौ आदि फसलों की सिंचाई करने का उल्लेख है।

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम्

वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥

(अथर्व. 4.15.3)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में वर्षा जल के द्वारा फसलों की सिंचाई करने की मरूद्गण से प्रार्थना की गई है ।

अमरकोश (600 ई.) में क्षेत्रों का 2 प्रकार से विभाजन किया गया है - (देवमातृका) वे क्षेत्र जिनमें सिचाई वर्षा से होती है तथा (नदी मातृका) वे क्षेत्र जिनमें सिचाई नदियों से होती हैं। नीतिसार में भी मानव निर्मित सिचाई साधनों का उल्लेख हैं।

इनके अतिरिक्त मैगस्थनीज के 'इण्डिका' में 'कौटिल्य' के 'अर्थशास्त्र' के आधार पर तड़ाग (तालाबों), कूप (कूओं), वापियों (बाड़ियों) और नदियों के जल द्वारा पीने के पानी की व्यवस्था तथा सिंचाई की नहरों आदि का वर्णन भी पाया जाता है।

9.11 रथ निर्माण -

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन, त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ॥

(ऋग. 1.118.2)

यह त्रिकोण आकार का होता था इसमें तीन पहिए होते थे।

सोमापूषणा रजसो विमानं, सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।

विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥

(ऋग 2.40.3)

सात पहिए वाले, बहुत विशाल, चारों और मुड़ सकने वाले सङ्केत से चलने वाले तथा 5 इंजन (रश्मि) वाले दिव्य रथ का उल्लेख है।

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं, सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।

(ऋग. 8.58.3)

रथ में प्रकाश की व्यवस्था (ज्योतिषमान), पहचान के लिए झण्डा (केतुमान) होता था। इसकी सीटे अच्छी और सुखद होती थी। अपनी सुविधाओं के कारण यह लोकप्रिय था। इसमें 3 पहिए थे।

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।

त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे॥

(ऋग. 1.157.3)

इसमें 3 सीटें और 3 पहिए थे। 'मधुवाहनः' शब्द का संकेत है कि इसमें झटका नहीं लगता था।

9.12 प्राचीन भारत में जल प्रबन्धन -

प्राचीन काल से ही भारत में जल प्रबन्धन की परम्पराएँ रही हैं। सिंचाई, पेयजल एवं अन्य कार्यों हेतु कृत्रिम एवं प्राकृतिक जल स्रोतों कुआँ, तालाब, नहरों, टैंकों, झीलों, नदियों का जल प्रयोग किया जाता था।

अदेवमातृको रम्यः श्वापदैः परिर्वाजतः ।

कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव ॥

(रामायण 2.94.39)

रामायण में भी जल प्रबन्धन का उल्लेख मिलता है कोशल देश की 'अवदेवमातृका' अर्थात् वर्षा के जल पर निर्भर न रहने वाले देश के रुप में प्रशंसा की गई है, इससे यह स्पष्ट होता है कि वहाँ के लोग जलापूर्ति के लिए मानव निर्मित जलस्रोतों का उपयोग करते थे।

कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि च बृहन्ति च।

भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका ॥

(महाभारत 2.5.67)

महाभारत में युधिष्ठिर की सभागृह में सिंचाई के मानव निर्मित जल स्रोतों नहरों, झीलों आदि की चर्चा का उल्लेख है। सिंचाई के इन जलस्रोतों को निश्चित दूरी पर बनाने का उल्लेख किया गया है ।

सेतुबन्धः सस्यानां योनिः।

नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु।

(वर्षगुणलाभः वृष्टिरसाध्यसस्यफलाधिगमः।)

(कौटिल्य अर्थशास्त्र 7.14)

कौटिल्य अर्थशास्त्र में फसलों की सिंचाई के विषय में बताया गया है, जलस्त्रोतों से सिंचाई उतनी ही लाभदायक होती है जितनी वर्षा के जल द्वारा की जाती है।

महतः स्थलादल्पमौदकं श्रेयः।

सातत्यादवस्थितत्वात् फलानाम्।

(स्थलं वृष्टि मात्रजललभ्यम्। औदकं सदाजलसरोयुतं नदीयुक्तं च।)

(कौटिल्य अर्थशास्त्र 7.11)

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्षा जल से सिंचाई पर न निर्भर रहने वाले एवं जलस्त्रोतों के द्वारा सिंचाई करने वाले देश का समृद्ध देश के रुप में उल्लेख किया है।

तड़ागकूपदीर्घिकाजलनिर्गममार्गदेवगृहाणि कर्तव्यानि।

(मनुस्मृति 8.288, कुल्लूकटीका)

मनुस्मृति में पेयजल एवं सिंचाई कार्यों के लिए कृत्रिम जल स्त्रोतों के निर्माण को राजा के कर्तव्य रुप में बताया गया है।

कूपकर्तुस्तत्प्रवृत्ते पानीये दुष्कृतस्यार्थं विनश्यति।

तडागकृन्नित्यतृप्तो वारुणं लोकमश्नुते।

(विष्णु धर्मसूत्र 11.1, 2)

कूपारामतडागादिदानम् –

दानेन सर्वान्कामानवाप्नोति। तोयदः सर्वकामसमृद्ध।

(वसिष्ट धर्मसूत्र, 21)

विष्णु धर्मसूत्र एवं वसिष्ठ धर्मसूत्र में भी जलस्त्रोतों के निर्माण करने का उल्लेख है।

न तद् गृहम्, नैव जलपूरो त्यनाशयत्।

(राजतरङ्गिणी (जोनराज) 468)

राजतरङ्गिणी (जोनांर्जा) में वर्षा की अधिकता के कारण बाढ़ का उल्लेख हैं।

प्राचीन भारत में सिंचाई की विभिन्न पद्धतियों का उपयोग किया जाता था।

गम्भीराँ उदधीरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥

(ऋग्वेद. 3.45.3)

ऋग्वेद में नदियों से कुल्या (नहरों) छोटी नलिकाओं के द्वारा खेतों में जल पहुँचाने का उल्लेख है।

कुल्यायां समुपस्पृश्य अश्वमेधमवाप्नोति।

(महाभारत 13.26.53)

महाभारत में भी खेतों में सिंचाई के लिए (कुल्या) नहरों का उपयोग करने का उल्लेख है।

शाल्यर्थं कुल्याः प्रणीयन्ते ताभ्यश्च पानीयं पीयते।

(पतञ्जलि महाभाष्य 1.1.23)

पतञ्जलि महाभाष्य में खेतों में सिंचाई के लिए कुल्या (नहरों) का प्रयोग होने का उल्लेख है।

सिंचाई के जलस्रोतों में झील प्रमुख स्रोत था। सौराष्ट्र गिरनार पर्वत में स्थित सुदर्शन झील प्राचीनकाल की प्रमुख झीलों में से एक है।

कल्हण द्वारा रचित राजतरङ्गिणी में महापद्मा, वुलर, डल झील आदि का उल्लेख मिलता है।

लघु स्तर पर सिंचाई के लिए कुओं का प्रयोग किया जाता था एवं घरेलू कार्यों में उपयोग होने वाले जल को कुएँ से प्राप्त किया जाता था।

अथ पुष्करिणीकूपतडागानाम्।

(शांखायन गृह्यपरिशिष्ट 5.2)

अथ पूर्त्तानि। वाप्यादिविधिः।

(आश्वलायन गृह्यपरिशिष्ट 4.9)

वापीकूपतडागाराम देवतायतनानां प्रतिष्ठापनं व्याख्यास्यामः।

(पारस्कर गृह्यपरिशिष्ट 1)

विभिन्न गृह्यपरिशिष्ट जैसे शाङ्खायन, आश्वलायन, पारस्कर में कूप निर्माण की विधि का उल्लेख है।

सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत्। *(कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.1)*

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार राजा नए गाँव के निर्माण के समय बाँध का निर्माण करवाता था।

सिन्धु घाटी सभ्यता के उत्खनन से मिलें साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि पेयजल एवं अन्य कार्यों हेतु कुओं का उपयोग किया जाता था।

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु।

धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥

(ऋग्वेद. 10.4.1)

ऋग्वेद में मरुस्थलीय क्षेत्र में पेयजल हेतु जलाशय का उल्लेख है।

नैरूज्यार्थं हि धान्यानां जलं भाद्रे विमोचयेत्।

मूलमात्रार्पितं तत्र (भाद्रे) कारयेज्जलरक्षणम्।

(कृषिपराशर, श्लोक 133)

कृषि पराशर में भाद्रपद माह में खेतों से जलनिकासी करने का उल्लेख है।

स्वसेतुभ्यः हस्तप्रावर्तितमुदकभागं पञ्चमम्।

स्कन्धप्रावर्तितं चतुर्थम्।

स्रोतोयन्त्रप्रावर्तितं तृतीयम्।

चतुर्थम् नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम्।

(अरघट्टकादियन्त्रेण) (कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.24.41)

कौटिल्य अर्थशास्त्र में जलस्त्रोतों से जल लाने की विधियों का उल्लेख है, जिनमें से पात्र को जल से भरकर हाथों के द्वारा लेकर आना एवं जल से भरे हुए पात्र को कन्धे पर रखकर लेकर आना आदि प्रमुख विधियाँ शामिल हैं।

राजगृहं यभामध्यं गवाश्व गजशालिकम् ।

प्रशस्तवापीकूपादिजलयन्त्रैः सुशोभितम्॥

(शुक्रनीति 1.127)

शुक्रनीति में राजा के महल में पेयजल एवं स्नान हेतु कुँआ बनाने का उल्लेख मिलता है।

अन्येषां वा बध्नतां भूमि मार्गवृक्षोपकरणानुगृहं कुर्यात्, पुण्यस्थानारामाणां च।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.1)

सिंचाई कार्य के लिए भूमि, मार्ग प्रदान करने का उल्लेख है।

(दस्यवः) कूपाः प्रपाश्चद्विजेषु दद्यरिव ते।

(महाभारत 12.65.19)

सार्वजनिक पेयजल स्त्रोतों की खुदाई के लिए लोगों को प्रोत्साहित करने का उल्लेख मिलता हैं। प्राचीनकाल में नवीन जलस्त्रोतों के निर्माण कार्य को प्रोत्साहित करने का भी कार्य किया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लेख है, जो व्यक्ति नवीन जलस्त्रोत निर्माण का कार्य करेगा उसका 6 वर्ष का कर क्षमा किया जाएगा इस तरह लोगों को नवीन जलस्त्रोतों के निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।

नवप्रवर्तने पाञ्चवार्षिकः परिहारः।

(करमोक्षः) आधारपरिवाहकेदारोपभोगः।

परक्षेत्रकृष्टबीजहिंसायां परस्परहिंसायां हिंसाद्विगुणो दण्डः।

पश्चात्रिविष्टमधरतटाकं नोपरितटाकस्य केदारमुदकेनाप्लावयेत्।

उपरि निविष्टं पूरास्त्रावं वारयेत् तटाकवामनं च।

सेतुभ्यो मुञ्चतस्तोयमवारे षद्गणो दमः।

वारे वा तोयमन्येषां प्रमादेनोपरून्धतः।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र)

कौटिल्य अर्थशास्त्र में सिंचाई के जलस्त्रोतों को प्रदूषित करने, नहरों का जल रोकने, बाँध का बिना अनुमति गेट खोलनें आदि कार्यों के लिए दण्ड का प्रावधान है।

तवकोद्यानतीर्थानि तोडमेध्येन विनाशयेत्।

अमेध्यं शोधयित्वा तु दण्डयेत्पूर्वसाहसम्।

(स्मृतिचन्द्रिका 4.556.8.9)

सार्वजनिक जलाशयों के जल को अशुद्ध करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध दण्ड के प्रावधान का उल्लेख है। इस तरह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में जल प्रबन्धन की व्यवस्था सुदृढ़ थी।

अभ्यास कार्य

प्र.1. सही विकल्प का चयन कीजिए।

1) कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित हस्तचालित कूलिंग उपकरण का नाम है –

अ) डमरू यंत्र ब) सम्राट यंत्र

स) वारियंत्र द) इनमें से कोई नहीं

2) मौर्यकालीन वर्षा मापक यंत्र है –

अ) गोष्पद ब) वर्धमान

स) गोलाकार कटोरी द) इनमें से कोई नहीं

3) प्राचीन समय में पनचक्की का उपयोग किस कार्य में किया जाता था -

अ) आटा पीसने में ब) तेल निकालने में

स) गन्ने का रस निकालने में द) इनमें से कोई नहीं

प्र.2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1) ऋग्वेद में नदी के जल को.....कहा गया है।

2) भारत के.....राज्य में बॉस की नलियों द्वारा सिंचाई की जाती है।

3) अमरकोश के अनुसार देवमातृका क्षेत्र में सिंचाई.....से होती है।

प्र.3. निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य (✓) अथवा असत्य (✗) का चिह्न अंकित कीजिए।

1) प्राचीनकाल में ओखल का उपयोग छिलकेदार अन्न को कूटने में किया जाता था।

2) प्राचीनकाल में गन्ने के कोल्हू का उपयोग गन्ने का रस निकालने में किया जाता था।

3) ऋग्वेद में चक्र का आयुध के रुप में उल्लेख है।

प्र.4. सही जोड़ी मिलान कीजिए।

	कॉलम 'अ'	कॉलम 'ब'
1)	अष्टाध्यायी	क) कौटिल्य
2)	अर्थशास्त्र	ख) पाणिनि
3)	नदी या समुद्र में बना हुआ दुर्ग	ग) वन दुर्ग
4)	वनों से घिरा हुआ दुर्ग	घ) जल दुर्ग

प्र.5. अति लघूत्तरीय प्रश्न

1) ओखली का उपयोग किस कार्य में किया जाता है ?

प्र.6. लघूत्तरीय प्रश्न

1) जल शुद्ध करने उपाय लिखिए।

2) वर्षामापक यन्त्र के बारे में बताइए।

प्र.7. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1) प्राचीनकालीन सिंचाई पद्धति के बारे में बताइए।

अध्याय - 10

भारतीय आहार पद्धति

अध्ययन बिन्दु

10.1 प्रस्तावना

10.2 हितकारी एवं अहितकारी आहार

10.3 भोजन विशेष के अतिसेवन/अजीर्ण से उत्पन्न विकार के निवारक द्रव्य

10.4 आहार विधि

10.5 षड्ऋतु चर्चा

10.6 अतिकृशता एवं अतिस्थूलता के लिए चिकित्सा

10.1 प्रस्तावना -

हमारा स्वास्थ्य हमारे द्वारा भोजन में ग्रहण किए गए आहार पर निर्भर करता है। स्वस्थ आहार का महत्त्व हमारे शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से है। उचित आहार, उचित तरीके से न लिए जाने पर बीमारियों का कारण बन सकता है। आचार्य चरक के अनुसार आहार को अनुशासित रूप से ग्रहण करने पर यह विभिन्न बीमारियों की रोकथाम में सहायक होता है। आचार्य कश्यप के अनुसार आहार औषधि के रुप में कार्य करता है।

मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।

(च.सू. 5.3)

मनुष्य को मात्रापूर्वक भोजन करना चाहिए। आहार की मात्रा अग्नि के बल की अपेक्षा करने वाली होती है।

यावद्धि अस्य अशनम् अशितम् अनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यं भवति।

(च.सू. 5.4)

आहार की जो मात्रा भोजन करने वाले की प्रकृति में बाधा न पहुँचाते हुए यथा समय पच जाएं वही उस व्यक्ति के लिए प्रमाणित मात्रा है।

मात्रावद्भक्षणम् अशितम् अनुपहत्य प्रकृतिं बलवर्णसुखायुषा योजयति उपयोक्तारम् अवश्यमिति।

(च.सू. 5.8)

मात्रा युक्त भोजन खाने वाले व्यक्ति को निश्चित ही बल, वर्ण, सुख और पूर्ण आयु प्राप्त होती है।

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
अजातानां विकराणामनुत्पत्तिकरं च यत् ॥

(च.सू. 5.13)

ऐसे आहार द्रव्यों का नित्य सेवन करना चाहिए जिससे स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता रहे। अर्थात् स्वास्थ्य उत्तम बना रहे और जो रोग उत्पन्न नहीं हुए है उनकी उत्पत्ति भी न हो सके।

10.2 हितकारी एवं अहितकारी आहार -

हितकारी आहार ऐसे आहार जिसका सेवन करने से आरोग्य की प्राप्ति होती है हितकारी आहार कहलाते हैं।

तत्र, एकान्तहितानि जातिसात्म्यात् सलिलघृतदुग्धौदनप्रभृतीनि।
एकान्ताहितानि तु दहनपचनमारणादिषु प्रवृत्तान्यग्निक्षारविषादीनि ॥
संयोगादपराणि विषतुल्यानि भवन्ति।
हिताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति॥

(सु. सू. 20.4)

जल, घृत, दुग्ध, चावलों का भात ये द्रव्य मनुष्य जाति की हित की दृष्टि से जन्म से ही हितकारी है। दहन, पाचन आदि कार्यों में अग्नि, क्षार और विष अहितकारी होते हैं । संयोग के कारण अच्छे द्रव्य भी विषतुल्य हो जाने से अहितकारी है।

रक्तशालिषष्टिककङ्गुकमुकुन्दकपाण्डुकपीतकप्रमोदककालकासनपुष्पककर्दमकशकु

नाहृतसुगन्धककलमनीवारकोद्रवोद्दालकश्यामाकगोधूमवेणुयवादयः।

गव्यं घृतं सैन्धवदाडिमामलकमित्येष वर्गः सर्वप्राणिनां सामान्यतः पथ्यतमः॥

(सु.सू. 20.5)

लाल चावल, षष्टिक (60 दिन में पकने वाले), चावल कङ्गुक (काङ्गुनी) ,मुकुन्दक (काले साँठी), पाण्डुक (पीले धान्य), पीतक, प्रमोदक, कालक, असनक, पुष्पक, कर्दयक,शकुनाछत, गन्धक, कलम, नीवार धान्य, कोद्रव (कोदो), उद्धालक (वनकोदो), श्यामाक, गेहूँ, वेणुयवादि धान्य-विशेष, गौ का घी, सैन्धव लवण, अनारदाने और आँवले आदि पदार्थों वाला वर्ग सर्वप्राणियों के लिए सामान्यतया अधिक हितकारी है।

एकान्तहितान्येकान्ताहितानि च प्रागुपदिष्टानि।

हिताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥

(सु.सू. 20.7)

कुछ द्रव्य एकान्त हितकारी होते हैं जैसे पानी, कुछ द्रव्य एकान्त अहितकारी होते हैं जैसे अग्नि अहितकारी आहार ऐसे आहार जिनका सेवन करने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है अहितकारी आहार कहलाते है।

संयोगतस्त्वपराणि विषतुल्यानि भवन्ति।

यद्यथा वल्लाफलकवुककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकदधितैलविरोहिपिष्टशुष्क शाकाजाविकमांसमद्यजाम्बवचिलिचिममत्स्यगोधावराहांश्च नैकध्यमश्नीयात् पयसा।

(सु.सू. 20.8)

कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो अन्य पदार्थों के साथ संयोग करने से विषतुल्य हो जाते हैं। जैसे - वल्ली (लता) पर लगने वाले फल कूष्माण्ड आदि कवक (छत्रक) निम्ब्वादि अम्ल फल, नमक, कुलथी, तिल की खली, दही, तैल, अङ्कुरित धान्य, सूखे शाक,जामुन के फल इन पदार्थों में किसी को भी दुग्ध के साथ मिलाकर सेवन नहीं करना चाहिए।जब दो पदार्थों के संयोग होने

से भिन्न गुणधर्म वाला एक तीसरा ही पदार्थ उत्पन्न हो जाय, और वह शरीर पर अहित प्रभाव करे उसे संयोग विरुद्ध कहते हैं।

निम्नलिखित सारणी में खाद्य पदार्थों का हितकारी एवं अहितकारी संयोग का वर्णन किया गया है –

सारणी 10.1 – खाद्य पदार्थों का हितकारी संयोग

क्रं.	खाद्य पदार्थ	हितकारी संयोग (जिस वस्तु से पाचन होता है)
1.	अरहर	कांजी
2.	आम	दूध
3.	आलू	तण्डुलोदक
4.	ईख (गन्ना)	अदरक
5.	उड़द	तक्र, खांड
6.	केला	घी
7.	खिचड़ी	सेंधा नमक
8.	गुड़	सोंठ और नागरमोथा
9.	गेहूँ	ककड़ी
10.	घी	जम्बीरी नींबू का रस
11.	चना	मूली
12.	जम्बीरी नींबू	नमक
13.	दूध	मूंग का यूष (सूप)
14.	द्राक्षा (अंगूर, किशमिश) पिस्ता, अखरोट और बादाम	लौंग
15.	नारंगी	गुड़

16.	पिष्टान्न (गेहूँ आदि के आटे से बने पदार्थ) तथा इनसे बने बड़े आदि	शीतल जल/नीम की जड़
17.	मक्का	अजवायन
18.	मूंग	आँवला
19.	मिश्री	सोंठ
20.	सूरण (जिमींकन्द)	गुड़

सारणी 10.2 – खाद्य पदार्थों का अहितकारी संयोग

खाद्य पदार्थ	अहितकारी संयोग
अंकुरित धान्य, चने	कमल नाल, पका हुआ भोजन
उड़द की दाल	मूली
केला	तक्र (मट्ठा)
खीर	कटहल, खटाई (दही, नींबू आदि) , सत्तू
खरबूजा	दही, दूध, मूली के पत्ते, पानी आदि
गर्म जल	शहद, कुल्फी, आइसक्रीम व अन्य शीतल पदार्थ
घी	काँसे के बर्तन में दस दिन या अधिक समय तक रखा हुआ
घी	समान मात्रा में शहद, ठण्डा जल
चावल	सिरका
तरबूज	ठण्डा पानी, पुदीना आदि
तिल की पिट्ठी	उपोदिका (पोई)
दही	खीर, दूध, पनीर, गर्म भोज्य पदार्थ, खीरा, खरबूजा, ताड़ का फल
दूध	दही, नमक, मूली, मूली के पत्ते, कच्चे सलाद, सहिजन, इमली, खरबूजा, बेलफल, नारियल, आम्रातक (आम्बड़ा), नींबू, लिकुच

	(बड़हल), करौंदा, कमरख, जामुन, कैथ, पारावत (अम्ल फल), अनार, आँवला, गलगल, तोरई, गुड़, तिलकुट, कुलथी, उड़द, मोठ, निष्पाव, कंगु, वनक, सत्तू, तेल, खट्टे फल
दूध, खिचड़ी	इनको मिलाकर खाना विरुद्धाहार
नमक	अधिक मात्रा में खाना
मकोय	पिप्पली, काली मिर्च, गुड़, शहद
शहद	मकोय (काकमाची), घी (समान मात्रा में पुराना घी), वर्षा का जल, तेल, वसा, अंगूर, कमल का बीज, मूली, ज्यादा गर्म जल, गर्म दूध या अन्य गर्म पदार्थ, कुसुम्भ का साग, शार्कर (शर्करा से बना शरबत) आदि
शीतल जल	घी, तेल, गर्म दूध या गर्म पदार्थ, तरबूज, अमरूद, खीरा, ककड़ी, मूँगफली, चिलगोजा आदि

10.3 भोजन विशेष के अतिसेवन/अजीर्ण से उत्पन्न विकार के निवारक द्रव्य

भोजन में किसी खाद्य पदार्थ को अधिक मात्रा में खाने से अजीर्ण या अपच हो सकता है। अजीर्ण से उत्पन्न विकार को आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति द्वारा दूर किया जा सकता है। निम्नलिखित सारणी में कुछ खाद्य पदार्थ के अतिसेवन से उत्पन्न विकार के निवारक द्रव्यों का वर्णन किया गया है –

सारणी 10.3

क्रं.सं.	खाद्य पदार्थ	अतिसेवन-जन्यविकार	चिकित्सा
1.	आम	अतिसारकारक	घृत के साथ इलायची का सेवन
2.	आलू	वातकारक	घृत के साथ काली मिर्च के दाने

3.	काली चाय	उत्तेजक, अवसादक कारक	अदरक
4.	कुल्फी	कफकारक, रक्ताधिक्यकर	लौंग या इलायची
5.	केला	कफकारक	इलायची
6.	कैफीन (कॉफी)	उत्तेजक	जायफल चूर्ण का सेवन इलायची सेवन
7.	खट्टी मलाई	कफकारक	धनिया या इलायची
8.	गेहूँ	कफकारक	अदरक
9.	चावल	कफकारक	लौंग या काली मिर्च के दाने
10.	चॉकलेट	उत्तेजक	इलायची या जीरा
11.	जौ	कफकारक	हल्दी, सरसों के बीज या जीरा
12.	टमाटर	कफकारक	नींबू या जीरा
13.	दधि	कफकारक	जीरा या अदरक
14.	पनीर	पित्तकारक तथा कफप्रकोपक	काली मिर्च, लाल मिर्च
15.	पापकॉर्न (लावा, फुटेहरा)	रुक्षताकारक तथा वातकारक	इसका घृत के साथ सेवन
16.	बन्दगोभी	वातकारक	सूरजमुखी के तेल में हल्दी तथा सरसों के बीज के साथ पकाकर सेवन करें ।
17.	मक्खनफल व नाशपती	कफकारक	हल्दी, नींबू, लहसून या काली मिर्च

18.	मूँगफली	वातहर तथा पित्तकारक	इसको जल में सम्पूर्ण रात्रि भिगोकर तथा गर्म कर सेवन करें
19.	मूँगफली का मक्खन	गुरु, पित्तकारक, शिर:शूलकारक	अदरक या भुना हुआ जीरा चूर्ण
20.	शुष्क फल	रुक्षताकारक या वातकारक	पानी में डुबोकर इन फलों का सेवन
21.	सब्जियाँ (फली वाली)	वातकारक तथा आध्मान (अफारा) करने वाली	लहसुन, लौंग, काली मिर्च, लाल मिर्च
22.	हरितक (सलाद)	वातकारक	जैतून तेल का नींबू रस के साथ सेवन

10.4 आहार विधि -

अन्नपान मन को बल प्रदान करता है, शरीर की सम्पूर्ण धातुओं के समुदाय, बल, वर्ण एवं इन्द्रियों में प्रसन्नता लाने वाला है इससे विपरीत रूप से किया गया अन्नपान अहितकर होता है।

शूकधान्यवर्ग-

रक्तशालिर्वरस्तेषां तृष्णाघ्नस्त्रिमलापहः।

महांस्तस्यानुकलम: तस्याप्यनु ततः परे ॥

(च.सू. 27.11)

सभी धान्यों में, लाल धान्य सबसे श्रेष्ठ होता है, यह प्यास को दूर करता है और त्रिदोष का शामक है इससे न्यून गुण 'महाशालि' और इससे न्यूनगुण 'कलम' धान का होता है। ऐसा चरक संहिता में कहा गया है।

यवका हायनाः पांसुवाप्यनैषधकादयः।

शालीनां शालयः कुर्वन्त्यनुकारं गुणागुणैः ॥

(च.सू. 27.12)

यवक, हायन, पांसु, वाप्य, नैषधक आदि शालिधान, रक्त शालि के गुण के विपरीत गुण का अनुकरण करने वाले होते हैं।

शीतः स्निग्धोऽगुरुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरात्मकः।

षष्टिकः प्रवरो गौरः कृष्णगौरस्ततोऽनु च ॥

(च.सं. 27.13)

यह हल्का, मधुर और त्रिदोषशामक है। शरीर में स्थिरता को पैदा करता है। इनमें श्वेतवर्ण का साठी का चावल सबसे श्रेष्ठ होता है। अर्थात् श्यामवर्ण वाला साठी उसकी अपेक्षा कम गुणवाला होता है।

रूक्षः शीतोऽगुरु स्वादुर्बहुवातशकृद्यवः।

स्थैर्यकृत् सकषायश्च बल्यः श्लेष्मविकारनुत् ॥

(च.सू. 27.19)

जौ रुक्ष शीतल, लघु, मधुर, वायु और मल को अधिक बढ़ाने वाला है। शरीर में स्थिरता पैदा करता है। कषाय होता है। बलवर्धक है। कफजन्य विकार को दूर करता है।

सन्धानकृद्वातहरो गोधूमः स्वादुशीतलः।

जीवनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धः स्थैर्यकरो गुरुः॥

(च.सू. 27.21)

नान्दीमुखी मधूली च मधुरस्निग्धशीतले।

इत्ययं शूकधान्यानां पूर्वो वर्गः समाप्यते ॥

(च.सू. 27.22)

गेहूँ टूटे हुए स्थानों को जोड़ने वाला, वातशामक, रस में मधुर और शरीर में स्थिरता प्रदान करता है एवं भारी होता है। 'नान्दी मुखी' और 'मधूली' ये दोनों मधुर और शीतल होते हैं। शूकधान्य वर्ग में चावल, जौ, गेहूँ, ज्वार आते हैं। शमीधान्य वर्ग - मूँग, उड़द, चना, तिल आते हैं।

कषायमधुरो रुक्षः शीतः पाके कटुर्लघुः।

विशदः श्लेष्मपित्तघ्नो मुद्गः सूप्योत्तमो मतः ॥

(च.सू. 27.23)

मूँग, कषाय, मधुर, रुक्ष, हल्का, कफ पित्तनाशक और दालों में सबसे उत्तम होता हैं।

वृष्यः परं वातहरः स्निग्धोष्णो मधुरो गुरुः।

बल्यो बहुमलः पुस्त्वं माषः शीघ्रं ददाति च ॥

(च.सू. 27.24)

उड़द शुक्रवर्धक, वातनाशक, मधुर रस, बलवर्धक, पुंस्त्व-शक्ति को शीघ्र ही बढ़ाने वाला होता है।

राजमाषः सरो रुच्यः कफशुक्राम्लपित्तनुत्।

तत्स्वादुर्वातलो रूक्षः कषायो विशदो गुरुः॥

(च.सू. 27.25)

राजमाष भोजन में रुचि प्रदान करने वाला, अम्लपित्त रोग का नाशक होता है।

चणकाश्च मसूराश्च खण्डिकाः सहरेणवः।

लघवः शीतमधुराः सकषाया विरूक्षणाः॥

(च.सू. 27.28)

चना, मसूर, खंडिका, हरेणु (मटर) की दाल, रस में मधुर और कषाय सेवन करने पर शरीर में रूक्षता उत्पन्न करने वाला, पित्त कफजन्य रोगों में सूप के लिए या शरीर में लेप करने के लिए उत्तम होती है। इनमें मसूर की दाल सङ्ग्राही होती है और मटर की दाल वातवर्धक होती है।

पित्तश्लेष्मणि शस्यन्ते सूपेष्वालेपनेषु च।

तेषां मधुरः सङ्ग्राही कलायो वातलः परम्॥

(च.सू. 27.29)

स्निग्धोष्णो मधुरस्तिक्तः कषायः कटुकस्तिलः।

त्वच्यः केश्यश्च बल्यश्च वातघ्नः कफपित्तकृत् ॥

(च.सू. 27.30)

तिल, स्निग्ध, ऊष्ण, मधुर, कषाय, कटु रस वाला है। त्वचा और केश के लिए लाभकारी, बलवर्धक, वातनाशक, कफ एवं पित्त को बढ़ाने वाला होता है।

आढकी कफपित्तघ्नी वातला, कफवातनुत्।

अवल्गुजः सैडगजो, निष्पावा वातापित्तलाः ॥

(च.सू. 27.33)

अरहर की दाल, कफ और पित्त को दूर करती है, वातकारक है। बकुची कफवातनाशक है। चकवड के बीज और सेम के बीज, वात, पित्त को बढाने वाले होते हैं।

शाकवर्ग -

बथुआ, मटर, हरी सब्जियाँ, फलदार सब्जियाँ, भूमिगत सब्जियाँ।

पाठाशुषाशटीशाकं वास्तुकं सुनिषण्णकम्।

(च.सू. 27.88)

पाढा, शुषा (कसौंची), शटी (कचूर), बथुआ, तीन पतियाँ (चाङ्गेरी) इनके शाक ग्राही (दस्त को बन्द करने वाले) और त्रिदोषनाशक होते हैं, किन्तु बथुआ मल को पतला करने वाला होता हैं।

नात्युष्णशीतवीर्या च भेदिनी कुष्टनाशिनी।

राजक्षव कशाकं तु त्रिदोष शमनं लघु ॥

(च.सू. 27.90)

मकोय का शाक त्रिदोषनाशक, शुक्रवर्द्धक, रसायन, कुष्ठनाशक और मल का भेदन करने वाला होता है। राजक्षवक का शाक त्रिदोष का शामक, मल, मूत्र को बाँधने वाला, विशेषकर ग्रहणी, अर्श के रोगियों के लिए हितकारी होता है।

ग्राहि शस्तं विशेषेण ग्रहण्यर्शोविकारिणाम्।

कालशाकं तु कटुकं दीपनं गरशोथजित् ॥

(च.सू. 27.91)

कालशाक रस में कटु, अग्निदीपक, कृत्रिम विष और शोथ को दूर करने वाला होता है।

लघूष्णं वातलं रूक्षं कालायं शाकमुच्चते।

दीपनी चोष्णवीर्या च ग्राहिणी कफमारुते ॥

(च.सू. 27.92)

प्रशस्यतेऽम्लचाङ्गेरी ग्रहण्यर्शोहिता च सा।

मधुरा मधुरा पाके भेदिनी श्लेष्मवर्धनी ॥

(च.सू. 27.93)

मटर का शाक गुण में लघु, वातवर्धक और रूक्ष होता है। खट्टी चाङ्गेरी अग्निदीपक, मल को बाँधने वाली, कफ और वातजन्य विकारों में लाभकारी तथा ग्रहणी और अर्श रोग में हितकारी है।

रूक्षो मदविषघ्नश्च प्रशस्तो रक्तपित्तिनाम्।

(च.सू. 27.94)

चौराई का शाक रूक्ष, मद और सभी प्रकार के स्थातर एवं जंगम विष को दूर करने वाला होता है। रक्त-पित्त रोग के लिए लाभकारी है।

सर्वाणि सूप्यशाकानि फञ्जी चिल्ली कुतुम्बकः।

(च.सू. 27.98)

आलुकानि च सर्वाणि सपत्राणि कटिञ्जरम।

शणशाल्मलिपुष्पाणि कर्बुदारः सुवर्चला ॥

(च.सू. 27.99)

निष्पावः कोविदारश्च पतुरश्चुच्चुपर्णिका।

कुमारजीवो लोट्टाकः पालङ्क्या मारिषस्तथा ॥

(च.सू. 27.100)

कलम्बनालिकासूर्यः कुसुम्भवृकधूमकौ।

लक्ष्मणा च प्रपुन्नाडो नालिनीका कुठेरकः ॥

(च.सू. 27.101)

लोणिका यवशाकं च कुष्माण्डकमवल्गुजम्।

यातुकः शालकल्याणी त्रिपर्णी पीलुपर्णिका ॥

(च.सू. 27.102)

शाकं गुरु च रूक्षं च प्रायो विष्टभ्य जीर्यति।

मधुरं शीतवीर्यं च पुरीषस्य च भेदनम् ॥

(च.सू.)

स्विन्नं निष्पीडितरसं स्नेहाढ्यं तत् प्रशस्यते।

(च.सू. 27.103)

सभी सूप्य शाक (अर्थात् जिनके दानों की दाल बनती है) उन सभी मूंग, मटर, उड़द, अरह आदि की पत्ती का शाक, फज्जी (भारंगी-बभनेढी), चिली (बनबथुवा), कुतुम्बक (गूमा की पत्ती), आलू (सभी प्रकार के आलू की पत्ती का साग), कुटिअर (ताम्रमूली), शण (सन की पत्ती या फूल), सेमर का फूल, कर्बुदार (कचनार), सुर्वचला, निष्पाव (सेम), कोविदार (लाल कचनार का फूल), पत्तूर (चौराई का भेद), चुच्चु पर्णी (बड़ी चेच का भेद), कुमारुजीव (जीवन्ती), लोट्टक (मसी का भेद) ,पालङ्कया (पालक), मारिष (मर्सा), कलम्बी (करेमू), नालिका (नाई), आसुरी (राई), कुसुम्भ (बर्रे), वृकधूमक, लक्ष्मणा (लक्ष्मणा की पत्ती का शाक), प्रपुन्नाड (चकवड़), नलिनीका (कमल के डण्ठल, पत्ती, फूल आदि) अथवा नील की पत्ती, कुठेरक (वन तुलसी), लोणिका (नोनी), यवशाक (बबुवा), कुष्माड़ (सफेद सरिवन), शाल कल्याणी (चौराई का भेद), त्रिपर्णी (हंसपदी), पीलुपर्णिक (मूर्वा की पत्ती), इन सभी शाकवर्गों का गुण गुरु और रुक्ष होता है। प्रायः कब्जियत करने के बाद पचता है। रस में मीठा और मल का भेदन करने वाला होता है। इन सभी शाकों को उबाल कर, रस को निचोड़ कर, घी में भूनकर खाने से लाभकारी सिद्ध होता है।

शणस्य कोविदारस्य कर्बुदारस्य शाल्मलेः।

(च.सू. 104)

सन, कोविदार (लाल कचनार), कर्बुदार (सफेद कचनार) और सेमर का फल मल को बाँधने वाला और रक्तपित्त रोग में विशेष लाभकारी है।

फलवर्ग -

(मुनक्का, आलूबुखारा, अमरुद, बिल्ब, आम, जामुन)

तृष्णादाहज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान्।

वातापित्तमुदावर्तं स्वरभेदं मदात्ययम् ॥

(च.सू. 27.125)

तिक्तास्यतामास्यशोषं कासं चाशु व्यपोहति।

मृद्वीका बृंहणी वृष्या मधुरा स्निग्धशीतला ॥

(च.सू. 27.126)

मुनक्का प्यास, अन्तर्दाह, ज्वर, दमा, रक्तपित, उरःक्षत, क्षयरोग, वात, पित्त, उदावर्त रोग, स्वरभेद, यदात्यय रोग, मुख में तिक्त रस का होना, मुखशोष और कास रोग को शीघ्र दूर करने वाला होता हैं।

नात्युष्णं गुरु सम्पक्वं स्वादुप्रायं मुखप्रियम्।

बृंहणं जीर्यति क्षिप्रं नातिदोषमारुकम् ॥

(च.सू. 27.133)

आलूबुखारा का पक्का फल अधिक उष्ण नहीं होता, गुरु होता है। प्रायः मधुर और खाने में प्रिय होता है। बृंहण, शीघ्र पचने वाला और अधिक मात्रा में दोषों को नहीं बढ़ाता है।

द्विविधं शीतमुष्णं च मधुरं चाम्लमेव च।

गुरु पारावतं ज्ञेयमरुच्यत्यग्निनाशनम् ॥

(च.सू. 27.134)

पारावत (अमरुद) - मधुर और अम्ल 2 तरह का होता है।

मधुर पारावत - रस में मधुर और भारी होता है।

अम्ल पारावत – अरूचिनाशक और अत्यग्नि को दूर करने वाला होता है।

बिल्वं तु दुर्जरं पक्वं दोषलं पूतिमारुतम्।

स्निग्धोष्णतीक्ष्णं तद्बालं दीपनं कफवातजित्॥

(च.सू. 27.138)

पके हुए बिल्व का फल पचने में कठिन, दोषों को बढ़ाने वाला, दुर्गन्ध के साथ अपान वायु को निकालने वाला होता है। कच्चा बेल का फल-स्निग्ध, तीक्ष्ण, अग्निदीपक और कफ-वात को जीतने वाला होता है।

रक्तपित्तकरं बालमापूर्णं पित्तवर्धनम्।

पक्वमाम्रं जयेद्वायुं मांसशुक्रबलप्रदम्॥

(च.सू. 27.139)

कच्चा आम का फल रक्त और पित्त को बढ़ाने वाला होता है। तरूण आम का फल पित्तवर्धक होता है। पक्के आम का फल वायु को दूर करता है बल का वर्धक होता है।

कषायमधुरप्रायं गुरु विष्टम्भि शीतलम्।

जाम्बवं कफपित्तघ्नं ग्राहि वातकरं परम् ॥

(च.सू. 27.140)

पक्का जामुन का फल प्रायः रस में कषाय, मधुर, गुरु, कब्जकारी, वीर्य में शीत, कफ-पित्त नाशक, मल को बाँधने वाला और अधिक रूप में वातवर्धक होता है।

बदरं मधुरं स्निग्धं भेदनं वातपित्तजित्।

तच्छुष्कं कफवातघ्नं पित्ते न च विरुध्यते॥

(च.सू. 27.141)

ताजा बैर-रस में मधुर, स्निग्ध मल का भेदक और वात-पित्त को नष्ट करने वाला होता है। सुखा हुआ बैर-कफ, वात को दूर करता है और पित्त-विकार में विरुद्ध नहीं होता।

तिन्दुकं कफपित्तघ्नं कषायं मधुरं लघु।

विद्यादामलके सर्वान् रसांल्लवणवर्जितान्॥

(च.सू. 27.147)

रूक्षं स्वादु कषायाम्लं कफपित्तहरं परम्।

तिन्दुक (तेन्दू) का फल-कफ, पित्तनाशक, रस में कषाय, मधुर और लघु होता है।

आँवला-इसमें नमक रस को छोड़कर सभी रस है। गुण में रुक्ष, रस में मधुर, कषाय, अम्ल होता हैं। विशेष रुप में कफ और पित्त का शामक है।

मधुरं पित्तनुत्तेषां पूर्वं दाडिममुत्तमम्।

वृक्षाम्लं ग्राहि रूक्षोष्णं वातश्लेष्मणि शस्यते ॥

(च.सू. 27.151)

मीठा अनार जो केवल मीठा होता है वह पित्तनाशक होता है और वही अनारों में उत्तम होता है। वृक्षाम्ल - यह मल को बाँधने वाला, रूक्ष होता है। वात और कफ की विकृति में लाभकर होता है।

अम्लिकायाः फलं पक्वं तस्मादल्पान्तरं गुणैः।

गुणैस्तैरेव संयुक्तं भेदनं त्वम्लवेतसम् ॥

(च.सू. 27.152)

पकी इमली - इसका फल गुणों में वृक्षाम्ल से कुछ न्यून होता है। अम्लवेतस इमली के फलों के समान ही गुण वाला होता है, पर यह भेदक (मलनिस्सारक) होता है।

मधुरं किञ्चिदम्लं च हृद्यं भक्तप्ररोचनम्।

दुर्जरं वातशमनं नागरङ्गफलं गुरु॥

(च.सू. 27.156)

नारंगी - इसका फल रसों में मधुर और कुछ खट्टा होता है। हृदय के लिए लाभप्रद, भोजन में रुचिकारक, पचने में भारी, वातशामक एवं गुरु होता है।

हरितवर्ग - अदरख, जम्बीर, तुलसी, अजवायन, धनियाँ।

रोचनं दीपनं वृष्यमार्द्रकं विश्वभेषजम्।

वातश्लेष्मविबन्धेषु रसस्तस्योपदिश्यते ॥

(च.सू. 27.166)

अदरक - भोजन में रुचि उत्पन्न करता है, अग्नि को बढ़ाता है। इसका रस, वात और कफ से होने वाले विकारो को दूर करने वाला होता है।

रोचनो दीपनस्तीक्ष्णः सुगन्धिर्मुखशोधनः।

जम्बीरः कफवातघ्नः क्रिमिघ्नो भक्तपाचनः ॥

(च.सू. 27.167)

वीर - यह भोजन में रुचिकारक, अग्निदीपक, तीक्ष्ण, सुगन्धित है और मुख को साफ रखता है, वात, कफ और कृमि को नष्ट करता है एवं भोजन को पचाने वाला होता है।

हिक्काकासविषश्वासपार्श्वशूलविनाशनः।

पित्तकृत् कफवातघ्नः सुरसः पूतिगन्धहा ॥

(च.सू. 27.169)

सुरस (तुलसी) यह हिचकी, कास, विष-विकार, दमा और पार्श्वशूल को दूर करने वाली होती है। यह पित्तकारक, कफ वात को नष्ट करने वाली और शरीर या भोज्य द्रव्यों की दुर्गन्ध को दूर करने वाली होती है।

यवानी चार्जकश्चैव शिग्रुशालेयमृष्टकम्।

हृद्यान्यास्वादनीयानि पित्तमुत्क्लेशयन्ति च ॥

(च.सू. 27.170)

अजवायन, अर्जक, सहिजन, शालेय (सौंफ), मृष्टक (राई) ये हृदय के लिए लाभकारी, स्वाद में उत्तम और पित्त को प्रकुपित करने वाले होते हैं।

धान्यकं चाजगन्धा च सुमुखश्चेति रोचनाः।

सुगन्धा नातिकटुका दोषानुत्क्लेशयन्ति च ॥

(च.सू. 27.173)

धनियाँ (हरी धनियाँ) अजगन्धा (ममरी) सुमुख (तुलसी का भेद) ये भोजन में रुचि उत्पन्न करते हैं। मुख की दुर्गन्ध को दूर कर सुगन्ध उत्पन्न करते हैं। ये अधिक कटु नहीं होते हैं पर वात, पित्त, कफ को तकुपित करने वाले होते हैं।

जल वर्ग

जलमेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात्।

तत् पतत् पतितं चैव देशकालावपेक्षते ॥

(च.सू. 27.196)

आकाश से मेघजन्य जल एक ही प्रकार का गिरता है। गिरते हुए आकाश का जल देश – काल के अनुसार गुण या दोष की अपेक्षा करता है।

खात् पतत् सोमवायवर्कैः स्पृष्टं कालानुवर्तिभिः।

शीतोष्णस्निग्धरुक्षाद्यैर्यथासन्नं महीगुणैः ॥

(च.सू. 27.197)

आकाश से गिरा हुआ जल, समय के अनुसार गमन करने वाले चन्द्रमा, वायु, सूर्य से स्पर्श हो जाने के बाद समीप के पृथिवी में गुण के अनुसार शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदि गुणों से युक्त होता है।

नद्यः पाषाणविच्छिन्नविक्षुष्धाभिहतोदकाः।

हिमवत्प्रभवाः पथ्याः पुण्या देवर्षिसेविताः ॥

(च.सू. 27.209)

नदियों के जल के गुण-हिमालय पर्वत से निकली नदियों के तट पर ऋषि निवास करते हैं अतः वे नदियाँ पुण्या (पवित्र) होती है। उनका जल नदियों के मध्य में रहने वाले पाषाण के टुकड़ों से विच्छिन्न हो जाता है।

नद्यः पाषाणसिकतावाहिन्यो विमलोदकाः।

मलयप्रभवा याश्च जलं तास्वमृतोपमम् ॥

(च.सू. 27.210)

जो नदियाँ मलयाचल पर्वत से निकलती हैं, उनमें पत्थर के टुकड़े और बालू बहा करते हैं अतः उनका जल स्वच्छ और अमृत के समान मिश्ट होता है।

पश्चिमाभिमुखा याश्च पथ्यास्ता निर्मलोदकाः।

प्रायो मृदुवहा गुर्व्यो याश्च पूर्वसमुद्रगाः ॥

(च.सू. 27.211)

पश्चिमी समुद्र में जाने वाली नदियों का जल पथ्य और निर्मल होता है। पूर्वी समुद्र में जाने वाली नदियाँ मन्द वेग से रहती हैं उनका जल गुरु होता है।

गोरस वर्ग (दूध, दही, घृत) -

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।

गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः ॥

(च.सू. 27. 17)

तदेवंगुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्।

प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम् ॥

(च.सू. अन्नपान 27.218)

गौ का दूध रस में मधुर, शीतल, मृदु, स्निग्ध, गाढ़ा, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, मन्द, प्रसन्नता देने वाला दस गुणों से युक्त होता है।

महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः।

स्नेहान्यूनमनिद्राय हितमत्यग्नये च तत् ॥

(च.सू. अन्नपान. 27.219)

भैंस का दूध, गाय के दूध से अधिक गुरु और उष्ण होता है। गो के दुग्ध से भैंस के दुग्ध में घृत अधिक होता है। निद्राकारक और अत्यग्निशक है।

रूक्षोष्णं क्षीरमुष्ट्रीणामीषत्सलवणं लघु।

शस्तं वातकफानाहक्रिमिशोफोदरार्शसाम् ॥

(च.सू. अन्नपान. 27.220)

ऊँटनी का दुग्ध रुक्ष, वीर्य में उष्ण, कुछ लवण और लघु होता है, वात और कफ से होने वाले रोग, आनाह रोग, कृमिरोग, उदर रोग और अर्श रोगियों के लिए लाभकर हैं।

छागं कषायमधुरं शीतं ग्राहि पयो लघु।

रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम् ॥

(च.सू. अन्नपान. 27.221)

बकरी का दुग्ध रस में कषाय व मधुर, वीर्य में शीत मल को बाँधने वाला और लघु होता है। रक्तपित्त, अतिसार, क्षय, कास व ज्वर को दूर करता है।

जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः।

नावनं रक्तपित्ते च तर्पणं चाक्षिशूलिनाम् ॥

(च.सू.अन्नपान. 27.224)

माता (स्त्री) का दुग्ध शरीर में जीवन शक्ति को देने वाला होता है। जन्म से ही प्रत्येक मनुष्य के लिए अनुकूल होता है। शरीर में स्निधता लाता है। आँख के लिए हितकारी होता है ।

रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्धनम्।

पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं माङ्गल्यं बृंहणं दधि ॥

(च.सू. अन्नपान. 27.225)

दधि भोजन में रुचि उत्पन्न करता है। अग्नि को दीप्त करता है। शुक्रवर्द्धक है।शरीर में स्निग्धता लाता है। बलवर्द्धक है विपाक में खट्टा है।

त्रिदोषं मन्दकं, जातं वातघ्नं, दधि शुक्रलः।

सरः श्लेष्मानिलघ्नस्तु मण्डः स्त्रोतोविशोधनः ॥

(च.सू. अन्नपान. 27.228)

मन्दक (जो उत्तम रूप से जमा हुआ न हो) दही, वात, पित्त, कफ को कुपित करता है। जात (उत्तम रूप से जमा हुआ) दही वातनाशक होता है। दही की मलाई शुक्रवर्धक है। दही का जल कफ और वातनाशक एवं स्त्रोतों को शुद्ध करने वाला होता है।

शोफार्शोग्रहणीदोषमूत्रग्रहोदरारुचौ।

स्नेहव्यापादि पाण्डुत्वे तक्रं दद्याद्गरेषु च ॥ *(च.सू. अन्नपान. 27.229)*

मट्ठे का गुण शोभ, अर्श, ग्रहणी, मूत्र-कृच्छ्र उदर और अरुचि रोग में, स्नेह पीने के बाद होने वाले उपद्रव में, पाण्डुरोग में और विष विकार में मट्ठा का प्रयोग करना चाहिए।

मदापस्मारमूर्च्छायशोषोन्मादगरज्वरान्।

योनिकर्णशिरः शूलं घृतं जीर्णमपोहति ॥

सर्पींष्यजाविमहिषीक्षीरवत् स्वानि निर्दिशेत्।

(च.सू. अन्नपान. 27.233)

पुराना घृत, मद, मिर्गी, मूर्च्छा, यक्ष्मा, पागलपन, कृत्रिम विष के प्रभाव, ज्वर, योनिशूल, कान की वेदना और शिर की वेदना को शान्ति करता है। बकरी, भेड़, भैंस आदि का घृत इनके दुग्ध के गुण के समान ही गुण वाला होता है।

स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्धनम्।

वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम् ॥

(च.सू. अन्नपान. 27.231)

सामान्यतः घृत स्मरणशक्ति, बुद्धि, अग्नि, वीर्य, ओज, कफ और मेधा को बढ़ाने वाला होता है।

इक्षु वर्ग (ईख, गुड, शक्कर, मधु)

वृष्यः शीतः सरः स्निग्धो बृंहणो मधुरो रसः।

श्लेष्मलो भक्षितस्येक्षोर्यान्त्रिकस्तु विदह्यते ॥

(च.सू. अन्नपान. 27.237)

दाँतो से चूसे हुए ईख (गन्ना) के रस का गुण यह शुक्रवर्धक, वीर्य मे शीत, रस में मधुर और कफकारक होता है।

10.5 षड्ऋतु चर्चा -

हेमन्तऋतुचर्चा -

शीते शीतानिलस्पर्शसंरुद्धो बलिनां बली।

पक्ता भवति हेमन्ते मात्राद्रव्यगुरुक्षमः ॥

(च.सू. 6.9)

शीत (हेमन्त) ऋतु में जठराग्नि के बलवान होने से मात्रा और द्रव्य में गुरु आहार को पचाने में समर्थ रखती है।

गोरसानिक्षुविकृतीर्वसां तैलं नवौदनम्।

हेमेन्तेऽभ्यस्यतस्तोयमुष्णं चायुर्न हीयते ॥

(च.सू. 27.13)

हेमन्त ऋतु में दूध से निर्मित दही, मलाई, रबड़ी, छेना आदि एवं ईखा के विकार (गुड़, राब, चीनी, मिश्री आदि) एवं वसा, तेल, नये चावलों का भात और गर्म जल का सेवन करने से आयु की वृद्धि होती है।

वर्जयेदन्तपानानि वातलानि लघूनि च।

प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे ॥

(च.सू. 6.18)

हेमन्त ऋतु में वर्जनीय आहार-विहार, शीतकाल आ जाने पर वातवर्धक एवं लघु अन्न पान, प्रवात (तीव्र वायु), प्रमिताहार (थोड़ा नपातुला भोजन) और जल में घुले सत्तू का सेवन करना चाहिए।

अन्नों में चावल, गेहूँ, ज्वार का सेवन करना चाहिए।

सब्जियों में आलू, गोभी आदि आहार में ग्रहण करना।

शिशिर ऋतु चर्चा -

कटुतिक्तकषायाणि वातलानि लघूनि च।

वर्जयेदन्नपानानि शिशिरे शीतलानि च ॥

(च.सू. 6.21)

शिशिर ऋतु में वर्ज्य आहार, शिशिर ऋतु में कटु-तिक्त कषाय रस तथा वातवर्धक, हल्के और शीतल अन्नपान का त्याग कर देना चाहिए। इस ऋतु में गर्म भोजन, गर्म पानी, गर्म द्रव्य आहार में ग्रहण करना चाहिए।

वसन्त ऋतु चर्चा -

वसन्त ऋतु में जौ, पुराना गेहूँ, ज्वार, मसूर की दाल, चना, सरसौं का तेल आहार में ग्रहण करना चाहिए। फलों में सन्तरा, अंगूर का सेवन करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु चर्चा -

मयूखैर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रविः।

स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम्॥ *(च.सू. 6.27)*

ग्रीष्म ऋतु में मीठा चावल, ज्वार, गेहूँ, मसूर दाल, मटर दाल, खीरा ककड़ी, आहार में ग्रहण करना चाहिए। फलों में तरबूज, खरबूज, आम का सेवन करना चाहिए।

वर्षा ऋतु चर्चा –

पानभोजनसंस्कारान् प्रायः क्षौद्रान्वितान् भजेत्।

(च.सू. 6.36)

व्यक्ताम्ललवणस्नेहं वातवर्षाकुलेऽहनि।
विशेषशीते भोक्तव्यं वर्षास्वनिलशान्तये ॥

(च.सू. 6.37)

वर्षा ऋतु में सेवनीय आहार - विहार - वर्षाऋतु में खाने-पीने की सभी वस्तुएँ बनाते समय उनमें मधु अवश्य मिला लेना चाहिए। वात और वर्षा से भरे उन विशेष शीत वाले दिनों में अम्ल तथा लवण रस वाले और स्नेह द्रव्यों (घृतादि) की प्रधानता भोजन में रखनी चाहिए।

शरद् ऋतु चर्चा -

तत्रान्नपानं मधुरं लघु शीतं सतिक्तकम्।
पित्तप्रशमनं सेव्यं मात्रया सुप्रकाङ्क्षितैः ॥

(च.सू. 6.42)

शरद ऋतु में सेवनीय आहार विहार अच्छी भूख लगने पर रस में, मधुर, गुण में लघु, कुछ तिक्त रस में पित्त को शान्त करने वाले अन्नपान का मात्रापूर्वक सेवन करना चाहिए।

ऋतु अनुसार सेवन करने योग्य खाद्य पदार्थों को निम्नलिखित सारणी में वर्गीकृत किया गया है –

सारणी 10.4 – ऋतु-अनुसार सेवन करने योग्य हितकारी पदार्थ

ऋतु	माह	खाद्य पदार्थ
ग्रीष्म	ज्येष्ठ-आषाढ़	मधुर रस, स्निग्ध और शीतल पदार्थ
वर्षा	श्रावण-भाद्रपद	मधुर, अम्ल और लवण रस तथा स्निग्ध और उष्ण खाद्य-पदार्थों का सेवन

वसन्त	चैत्र – वैशाख	तिक्त, कटु और कषाय रस तथा रूक्ष और उष्ण गुण वाले खाद्य व पेयों का सेवन
शरद्	आश्विन-कार्तिक	मधुर, तिक्त और कषाय रसों का सेवन तथा रूक्ष एवं शीतल पदार्थ
शिशिर	माघ-फाल्गुन	मधुर, अम्ल और लवण रस तथा स्निग्ध और उष्ण खाद्य-पदार्थों का सेवन
हेमन्त	मार्गशीर्ष-पौष	मधुर, अम्ल और लवण रस तथा स्निग्ध और उष्ण खाद्य-पदार्थों का सेवन

सारणी 10.5 – ऋतु-अनुसार अत्यंत सावधानी से सेवन करने वाले पदार्थ मनुष्य की प्रकृति के अनुसार अहितकारी भी हो सकते है ।

ऋतु	माह	औषधि पदार्थ
ग्रीष्म	ज्येष्ठ-आषाढ़	हरीतकी चूर्ण का सममात्रा में गुड़ के साथ सेवन
वर्षा	श्रावण-भाद्रपद	हरीतकी चूर्ण का सममात्रा में सैंधव लवण के साथ सेवन
वसन्त	चैत्र – वैशाख	हरीतकी चूर्ण का सममात्रा में शहद के साथ सेवन
शरद्	आश्विन-कार्तिक	हरीतकी चूर्ण का सममात्रा में शर्करा के साथ सेवन
शिशिर	माघ-फाल्गुन	आधा चम्मच हरीतकी चूर्ण का सममात्रा में पिप्पली चूर्ण का ताजे जल के साथ सेवन
हेमन्त	मार्गशीर्ष-पौष	आधा चम्मच हरीतकी चूर्ण का सममात्रा में सौंठ चूर्ण के साथ सेवन

10.6 अतिकृशता एवं अतिस्थूलता के लिए चिकित्सा

- **अतिकृशता अथवा दुबलेपन की निम्नलिखित प्रकार से चिकित्सा की जा सकती है -**

  1. अच्छी नींद, प्रसन्नता, सन्तोष और मन की निश्चिन्तता ।
  2. नियमित आसन एवं प्राणायम करना। प्रातः भ्रमण द्वारा शुद्ध वायु का सेवन करना।

3. नियमित रुप से तेल की मालिश, स्निग्ध द्रव्यों का उबटन और गर्म जल से स्नान करना ।
4. लघु तथा शीघ्र पचने वाले संतुलित आहार का सेवन करना तथा शीतल एवं मिश्री युक्त दूध में शहद डालकर नित्य प्रातः तथा सायं समय सेवन करना ।
5. सब प्रकार की चिन्ता से मुक्त रहना ।
6. सौम्य व कोमल वस्त्रों को धारण करना । प्राकृतिक सुगन्धित द्रव्यों (इत्रों) और मालाओं का प्रयोग करना ।

- **अतिस्थूलता अथवा मोटापा के लिए निम्नलिखित प्रकार से चिकित्सा की जा सकती है -**

1. उपवास – कम मात्रा में और हल्का भोजन करना व समय पर भोजन करना ।
2. एक चम्मच त्रिफला चूर्ण (हरीतकी, बहेड़ा, आंवला) को 200 मिली पानी में भिगोकर रख दें । प्रातः काल गर्म करके आधा रहने पर छानकर पियें ।
3. गिलोय, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा तथा आँवला का क्वाथ बनाकर 50-100 मिली मात्रा में प्रातः सायं सेवन करना ।
4. तक्र (छाछ) के साथ जौ की रोटी व लौकी आदि के सुपाच्य शाक का सेवन ।
5. पाचक औषधियों का सेवन करना ।
6. प्रातः एवं सायं काल भ्रमण करना ।
7. रात्रि में जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठना ।
8. वातगुणयुक्त भोज्य पदार्थ एवं हरी सब्जियों तथा फलों का सेवन करना ।
9. शारीरिक व्यायाम, योगासन, प्राणायाम आदि प्रतिदिन करना ।
10. संशोधन चिकित्सा – वमन (उल्टी), विरेचन (दस्त), बस्ति (एनिमा), नस्य (नाक में औषधि-निक्षेपण) द्वारा शरीर में जमा दोषों, मलों को बाहर निकालना ।
11. हल्का गर्म पानी पीना ।

अभ्यास कार्य

प्र.1. सही विकल्प का चयन कीजिए –

(1) निम्न में से शाकवर्ग नहीं है –

अ) बथुआ ब) मटर

स) हरी सब्जियाँ द) मुनक्का

(2) निम्न में से फलवर्ग नहीं है –

अ) अमरूद ब) आम

स) जामुन द) चौराई

(3) निम्न में से गोरस वर्ग नहीं है -

अ) दूध ब) दही

स) घी द) नारंगी

प्र.2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(1) वसन्त ऋतु में फलों मे.....का सेवन करना चाहिए।

(2) सब्जियों में आलू, गोभी का सेवन.....ऋतु में करना चाहिए।

(3) आम का सेवन.....ऋतु में करना चाहिए।

प्र.3. सही जोड़ी मिलान कीजिए ।

कॉलम 'अ'	कॉलम 'ब'
1. इक्षु वर्ग	क. दही
2. गोरस वर्ग	ख. गुड़
3. जल वर्ग	ग. संतरा
4. फल वर्ग	घ. नदियों का जल

प्र.4. सही या गलत बताइए

(1) मनुष्य को मात्रापूर्वक भोजन करना चाहिए।

(2) अहितकारी आहार का सेवन करने से शरीर स्वस्थ रहता है।

(3) गौरस वर्ग में दूध, दही, घी आदि आते हैं।

प्र.5. अति लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) शाकवर्ग के नाम लिखिए।

(2) जब दो पदार्थों को संयोग करने पर उत्पन्न तृतीय पदार्थ शरीर पर अहित प्रभाव करे तो उसे क्या कहेगें ?

प्र.6. लघूत्तरीय प्रश्न -

(1) हेमन्तऋतुचर्चा से क्या आशय है ?

(2) आहार विधि से आप क्या समझते है ?

प्र.7. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) हितकारी एवं अहितकारी आहार को विस्तारपूर्वक समझाइए ।

परियोजना कार्य

(1) ऐसे पदार्थों की सूची बनाइए जिनका संयोग करने पर नया पदार्थ विषतुल्य हो जाता है।

वेदविभूषण परीक्षा / Vedavibhushan Exam/

वेदविभूषण प्रथम वर्ष /उत्तरमध्यमा I/कक्षा 11 वीं

आदर्श प्रश्न पत्र / Model Question Paper

विषय - भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा एवं प्रयोग

सेट – A

- सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है।
- सभी प्रश्न के उत्तर पेपर में यथास्थान पर ही लिखें ।
- इस प्रश्न पत्र में कुल 42 प्रश्न हैं, प्रत्येक प्रश्न के सामने निर्धारित अंक दिये गये हैं।
- उत्तीर्णता हेतु न्यूनतम 40% अंक निर्धारित हैं।

- It is mandatory to attempt all questions compulsorily.
- Write down the answers at the appropriate places provided
- This question paper contains 42 questions Marks for each question is shown on the side.
- The minimum passing marks is 40 %.

सही विकल्प के सामने (✓) चिन्ह बनाइए 5 x 1 = 5

प्र.1 भारत में पहली खगोलीय वस्तु कहाँ से प्राप्त हुई?

(अ) अंडमानद्वीप (स) दिल्ली

(ब) लक्षद्वीप (द) पंजाब

प्र.2 भारतीय खगोलशास्त्र के अनुसार नक्षत्रों की संख्या है -

(अ) 24 (स) 27

(ब) 29 (द) 35

प्र.3 जंतर - मंतर वेधशाला किससे संबधित है

(अ) खगोल विज्ञान (स) मानव विज्ञान

(ब) जीव विज्ञान (द) मनोविज्ञान

प्र.4 चेन्नाकेशव मंदिर कहाँ स्थित है?

(अ) सोमनाथपुरा (स) मदुरई

(ब) खजुराहो (द) देवगढ़

प्र.5 अमरकोश में कितने प्रकार की भूमि का वर्णन किया गया है?

(अ) 12 (स) 15

(ब) 10 (द) 8

बहुविकल्पीयप्रश्न 5 x 2 = 10

प्र. 6 ऋग्वेद में जल के कितने प्रकार बताए गए है?

(अ) 2 (स) 3

(ब) 4 (द) 5

प्र.7 कंदरिया महादेव मंदिर कहाँ स्थित हैं?

(अ) खजुराहो (स) भोपाल

(ब) ग्वालियर (द) इंदौर

प्र.8 भारत में मंदिर निर्माण की कितनी शैलियाँ है?

(अ) 4 (स) 2

(ब) 3 (द) 5

प्र.9 व्यापार मुख्यत: कितने प्रकार का होता हैं?

(अ) 2 (स) 4

(ब) 3 (द) 5

प्र.10 कोणार्क का सूर्य मंदिर किस राज्य में स्थित है?

(अ) ओडिशा (स) पंजाब

(ब) मध्य प्रदेश (द) उत्तर प्रदेश

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए। 10 x 2 = 20

प्र.11 बृहत्संहिता मे मौसमी वर्षा की भविष्यवाणी .....पर आधारित हैं।

प्र.12 आचार्य लगध ने.....ग्रंथ की रचना की।

प्र.13 यजुर्वेद में सौर वर्ष.....दिनों का माना गया।

प्र.14 योग दर्शन में कुल ..... सूत्र है।

प्र.15 वैदिक दर्शनों में कुल .....दर्शन है।

प्र.16 श्री रामानुजाचार्य ने .....धर्म का प्रचार किया।

प्र.17 ऊर्जा का अंतिम स्त्रोत.....है।

प्र.18 ..... को सभी वृक्षो में श्रेष्ठ माना गया है।

प्र.19 .....ग्रंथ में जीवों को नुकसान पहुँचाने वाले व्यक्ति के खिलाफ दंड का प्रावधान है।

प्र.20 दक्षिण भारतीय शैली के मंदिरो के प्रवेश द्वार को .....कहा जाता है।

सही जोड़ी मिलान कीजिए। 5 x 2 = 10

प्र.21	मकर संक्राति	(क)	तमिलनाडु
प्र.22	पोंगल	(ख)	उत्तर भारत
प्र.23	बृहत्संहिता	(ग)	कौटिल्य
प्र.24	अर्थशास्त्र	(घ)	वराहमिहिराचार्य
प्र.25	विमान	(ड.)	नागर शैली

सत्य या असत्य बताइए। 5 x 1 = 5

प्र.26 वस्तु विनिमय प्रणाली में वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है।

प्र.27 यजुर्वेद में वाणिज्य को तुला से संबोधित किया गया है।

प्र.28 वैदिक वाङ्मय में व्यापार प्रणाली में स्वर्ण का उपयोग मृद्रा के रूप में करने का उल्लेख है।

प्र.29 कालीबंगा, सिन्धु घाटी सभ्यता का नगर है।

प्र.30 विरूपाक्ष मंदिर का निर्माण विक्रमादित्य द्वितीय के शासन काल में हुआ।

अति लघूत्तरीय प्रश्न 5 x 2 = 10

प्र.31 अजंता की गुफाएँ कहाँ स्थित है?

प्र.32 CFC का पूरा नाम क्या है?

प्र.33 प्राचीन काल में मनुष्य की जीविकापार्जन का मुख्य साधन क्या था?

प्र.34 खाद किन पदार्थों से बानाया जाता है ?

प्र.35 हल के विभिन्न भागों का वर्णन किस ग्रंथ में किया गया है?

लघूत्तरीय प्रश्न 5 x 4 = 20

प्र.36 यज्ञ करने से वातावरण किस प्रकार शुद्ध होता है समझाइए ।

प्र.37 प्रमुख भारतीय चिंतनकार (दार्शनिक) के बारे में बताइए ।

प्र.38 नक्षत्र दिवस किसे कहते हैं?

प्र.39 निरंतर ऑक्सीजन छोड़ने वाले वृक्ष का क्या नाम है ?

प्र.40 गाय की तुलना पृथ्वी से क्यों की जाती है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न। 10 x 2 = 20

प्र.41 (क) जल शुद्ध करने की प्राचीन भारतीय पद्धति के बारे में बताइए ।

(ख) खगोलशास्त्र मे आर्यभह के योगदान के बारे में लिखिए ।

प्र.42 (क) द्रविड़ शैली पर आधारित प्रमुख मंदिरो के नाम बताइए ।

(ख) कृषि कार्य के लिए उपयुक्त बीज की तीन विशेषताएँ लिखिए ।

वेदविभूषण परीक्षा / Vedavibhushan Exam/

वेदविभूषण प्रथम वर्ष /उत्तरमध्यमा I/कक्षा 11 वीं

आदर्श प्रश्न पत्र / Model Question Paper

विषय - भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा एवं प्रयोग

सेट – B

सही विकल्प के सामने (✓) चिन्ह बनाइए। 5 x 1 = 5

प्र.1 बृहत्संहिता के दकार्गलनिरूपणम् के अनुसार यदि जम्बू वृक्ष के पूर्व में पास में दीमक का टीला हो तो पेड़ की किस दिशा में मीठा जल प्राप्त होगा?

(अ) उत्तर (स) दक्षिण

(ब) पूर्व (द) पश्चिम

प्र.2 गोपथ ब्राह्मण में कितने प्रकार के झरनों या जल प्रपातों का उल्लेख है?

(अ) 2 (स) 4

(ब) 3 (द) 1

प्र.3 हविर्यज्ञ संस्था के अनुसार यज्ञ के कितने प्रकार बनाए हैं?

(अ) 7 (स) 4

(ब) 6 (द) 3

प्र.4 खगोल विज्ञान से संबंधित जन्तर-मन्तर वेधशाला का निर्माण किस राजा के द्वारा किया गया?

(अ) विक्रमादित्य (स) सवाई जयसिंह

(ब) राजा भोज (द) इनमें से कोई नही

प्र.5 दशावतर विष्णु मंदिर कहाँ स्थित है?

(अ) देवगढ (स) मदुरई

(ब) खजुराहो (द) उज्जैन

बहुविकल्पीय प्रश्न 5 x 2 = 10

प्र.6 उत्तर भारतीय शैली के मन्दिरों में गर्भगृह का ऊपरी भाग क्या कहलाता है।

(अ) विमान (स) शिखर

(ब) अंर्तला (द) इनमें से कोई नही

प्र.7 प्रसिद्ध एलोरा गुफाओं में कुल कितनी गुफाएँ है?

(अ) 34 (स) 30 (ब) 25 (द) 35

प्र.8 पोंगल त्यौहार किस राज्य में मनाया जाता है?

(अ) तमिलनाडु (स) पंजाब

(ब) राजस्थान (द) मध्य प्रदेश

प्र.9 निम्न में से प्राचीन व्यापारिक केन्द्र था –

अ) धोलावीरा ब) वाराणसी

स) दिल्ली द) मथुरा

प्र.10 जब वस्तुओं एवं सेवाओ का क्रय-विक्रय एक ही देश की सीमा के अंदर होता है तो वह व्यापार कहलाता है?

(अ) देशी व्यापार (स) थोक व्यापार

(ब) विदेशी व्यापार (द) खेरजी व्यापार

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए। 10 x 2 = 20

प्र.11 वह व्यक्ति, जो विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओ का उपयोग करता है .....कहलाता है।

प्र.12 थोक व्यापारी .....से भारी मात्रा में सामान खरीदते हैं।

प्र.13 .....के चौकार आकार ने मन्दिरों के मूल डिजाइन बनाने के लिए प्रेरित किया।

प्र.14 .....वहाँ स्थान है, जहाँ मुख्य अधिष्ठाता देवता की मूर्ति को स्थापित किया जाता है।

प्र.15 वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय-विक्रय दूसरे देशों के साथ होने वाले व्यापार ..... को कहते हैं।

प्र.16 बृहत्संहिता .....की कृति है।

प्र.17 मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मंदिर .....शैली का मन्दिर है।

प्र.18 यजुर्वेद में एक वर्ष को .....ऋतुओं में विभाजित किया गया है।

प्र.19 प्राचीन ग्रन्थ गुरुग्रन्थ साहिब में वायु को .....कहा गया है।

प्र.20 गायत्री मन्त्र.....से लिया गया है।

सही जोड़ी मिलान कीजिए। 5 x 2 = 10

प्र.21	रिंग स्टोन	(क) आर्यभट्ट
प्र.22	सवाई जयसिंह	(ख) ब्रह्मगुप्त
प्र.23	घटी यन्त्र	(ग) मोहनजोदड़ो
प्र.24	आर्यभट्टीय	(घ) जल घड़ी
प्र.25	ब्रह्मस्फुटसिद्धांत	(ड.) जंतर-मंतर

सत्य या असत्य बताइए 5 x 1 = 5

प्र.26 बृहत संहिता दकार्गलनिरूपणम् अध्याय भूजल अन्वेषण पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

प्र.27 प्राचीन ग्रन्थ रामायण में उत्स्रुत कुओं के बारे में जानकारी मिलती है।

प्र.28 कुआँ, जल का प्राचीन स्रोत है।

प्र.29 क्लोरोफ्लोरोकार्बन, ओजोन परत को नष्ट करने का कार्य करता है।

प्र.30 पौधें , श्वसन क्रिया के उपरान्त ऑक्सीजन गैस छोडते हैं।

अति लघूत्तरीयप्रश्न 5 x 2 = 10

प्र.31 किस सभ्यता की मोहरों में एक सींगा पशु का चित्र दिखाई देता है?

प्र.32 अभिज्ञानशकुंतलम् ग्रन्थ के रचनाकार कौन है?

प्र.33 पञ्चसिद्धांतिका ग्रन्थ के रचनाकार का क्या नाम है ?

प्र.34 आकाश तारा मण्डल का उल्लेख किस ग्रन्थ में है ?

प्र.35 जंतर-मंतर वेधशाला किन स्थनों पर स्थित है।

लघू उत्तरीयप्रश्न 5 x 4 = 20

प्र.36 वेदान्त दर्शन के बारे में बताइए ।

प्र.37 प्रकृति के प्रति भारतीय धार्मिक ग्रन्थों का क्या दृष्टिकोण है ?

प्र.38 भारतीय वास्तुकला की दक्षिण भारतीय शैली को समझाइए ।

प्र.39 व्यापार से आप क्या समझते हैं?

प्र.40 प्राचीन भारत के कुछ व्यापारिक केन्द्रों के नाम बताइए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न 10 x 2 = 20

प्र.41 (क) खगोलशास्त्र में आर्यभट्ट के योगदान के बारे में बताइए ।

(ख) नदी और तालाबों को हम प्रदूषित होने से किस प्रकार बचा सकते हैं?

प्र.42 (क) मोर्यकालीन व्यापार व्यवस्था को समझाइए ।

(ख) बीज प्रत्यारोपण से क्या अभिप्राय है ?

वेदविभूषण परीक्षा / Vedavibhushan Exam/

वेदविभूषण प्रथम वर्ष /उत्तरमध्यमा I/कक्षा 11 वीं

आदर्श प्रश्न पत्र / Model Question Paper

विषय - भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा एवं प्रयोग

सेट – C

सही विकल्प के सामने (✓) चिन्ह बनाइए 5 x 1 = 5

प्र.1 दकार्गलनिरूपणम् के अनुसार शिरा शब्द का क्या तात्पर्य है?

(अ) जल धाराओं से (स) भूमि से

(ब) रक्तवाहिनियों से (द) इनमें से कोई नही

प्र.2 पाकयज्ञ संस्था के अनुसार यज्ञ के प्रकार हैं?

(अ) 7 (स) 3

(ब) 6 (द) 2

प्र.3 पौधों की उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिए खेतों में किस पदार्थ को डाला जाता है?

(अ) खाद (स) जल

(ब) बीज (द) इनमें से कोई नही

प्र.4 प्राचीन हल में जिस दण्ड से हल बाँधा जाता था उसे क्या कहते थे?

(अ) ईषा (स) रज्जु

(ब) पँचनिका (द) योत्रा

प्र.5 किस प्राचीन ग्रन्थ में हल के विविध अङ्गों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है?

(अ) कृषिपराशर (स) सुश्रुतसंहिता

(ब) वृहत्तसंहिता (द) चरक संहिता

बहुविकल्पीय प्रश्न 5 x 2 = 10

प्र.6 ऋग्वेद में नदी के जल को किस नाम से जाना जाता है?

(अ) स्वयंजा (स) खनिमित्रा

(ब) खनित्रिमा (द) इनमें से कोई नही

प्र.7 एक ही समय में दो अलग-अलग फसले उगाने की प्रणाली को क्या कहते हैं ?

(अ) इंटरक्रॉपिंग (स) खरीफ फसले

(ब) रबी फसले (द) इनमें से कोई नही

प्र.8 प्राचीन काल में जीविकापार्जन का मुख्य स्त्रोत था?

(अ) कृषि (स) सेवाक्षेत्र

(ब) उद्योग (द) इनमें से कोई नही

प्र.9 लीलावती ग्रन्थ किसकी कृति हैं।

(अ) भास्कराचार्य (स) वराहमिहिर

(ब) आर्यभट्ट प्रथम (द) इनमें से कोई नही

प्र.10 1 योजन के बराबर लगभग कितने किलोमीटर होता है।

(अ) 13.6 (स) 17

(ब) 15 (द) 12

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए 10 x 2 = 20

प्र.11 खगोल विज्ञान से संबंधित सबसे पहली वेधशाला .....शहर मे बनी ।

प्र.12 .....योग दर्शन के प्रणेता है।

प्र.13 .....पुराण में सृष्टि के आरम्भ एवं अन्त के बारे में बताया गया है।

प्र.14 आदि शंकराचार्य द्वारा.....सूत्रों की रचना की गई।

प्र.15 श्री रामानुजाचार्य.....सिद्धान्त के प्रर्वतक थे।

प्र.16 ऋग्वेद में एक वर्ष .....दिनों का माना गया।

प्र.17 वैदिक दर्शनों में कुल .....दर्शन है।

प्र.18 दक्षिण भारतीय मन्दिरों के प्रवेश द्वार को .....कहते हैं।

प्र.19 वैदिक सभ्यता में व्यापार प्रणाली में .....का उपयोग मुद्रा के रूप में किया गया।

प्र.20 चेन्नोकशव मन्दिर.....स्थित है।

सही जोड़ी मिलान कीजिए 5 x 2 = 10

प्र.21	सांख्य दर्शन	(क)	पतञ्जलि
प्र.22	योग दर्शन	(ख)	कपिल
प्र.23	न्याय दर्शन	(ग)	गौतम
प्र.24	वैशेषिक दर्शन	(घ)	कणाद
प्र.25	मीमांसा दर्शन	(ड.)	बादरायण

सत्य या असत्य बताइए। 5 x 1 = 5

प्र.26 यज्ञ कर्म से वातावरण शुद्ध होता है।

प्र.27 हडप्पा के लोग बागवानी से अपरिचित थे।

प्र.28 यजुर्वेद में एक चन्द्र वर्ष 354 दिनों का माना गया है।

प्र.29 पृथिवी द्वारा किसी भी तारे के सम्बन्ध मे एक चक्कर पूरा करने में लगा समय नक्षत्र दिवस कहलाता है।

प्र.30 अभिज्ञानशांकुतलम् में प्रकृति का मनोहर चित्रण किया गया है।

अति लघूत्तरीय प्रश्न 5 x 2 = 10

प्र.31 रेशेदार फसलों के नाम बताइए?

प्र.32 कृषि सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थों के नाम लिखिए ?

प्र.33 मनुस्मृति में जीवों को नुकसान पहुँचाने वाले व्यक्ति के विरुद्ध क्या प्रावधान है ?

प्र.34 जंतर-मंतर वेद्यशाला भारत के किन शहरों में स्थित है?

प्र.35 किस वृक्ष को सभी वृक्षों में श्रेष्ठ कहा गया है?

लघूत्तरीय प्रश्न 5 x 4 = 20

प्र.36 सिन्धु सभ्यताकालीन वास्तुकला के बारे में बताइए।

प्र.37 प्राचीन भारत के कुछ व्यापारिक केन्द्रों के नाम बताइए।

प्र.38 वृक्षों की पूजा में सांस्कृतिक और व्यावहारिक क्या प्रेरणाएँ मिलती हैं?

प्र.39 उत्तर भारतीय मन्दिरों के बारे मे बताइए।

प्र.40 शिला तोड़ने की प्राचीन भारतीय प्रौद्योगिकी के बारे में बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न 10 x 2 = 20

प्र.41 (क) ग्राफ्टिंग से आप क्या समझते हैं ? किन पौधो का रोपण ग्रांफ्टिग पद्धति से किया जाता है?

(ख) कन्दरिया महादेव मंदिर किस शैली से बना हुआ है ? विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र.42 (क) सिन्धु घाटी सभ्यता की सुदाई में प्राप्त व्यापार व्यवस्था के साक्ष्यों पर प्रकाश डालिए?

(ख) भारतीय वास्तुकला की नागर शैली को समझाइए?

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

द्वारा सञ्चालित एवं प्रस्तावित राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - ४५६००६ (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in